जैन विद्या

भाग –1

सम्पादक :
मुनि सुमेरमल 'सुदर्शन'

जैन विद्या

भाग-१

(जैन विद्या प्रवेशिका परीक्षा, प्रथम वर्ष
के लिए स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक)

सम्पादक
मुनि सुमेरमल 'सुदर्शन'

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं–341306
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (01581) 226080, 224671
ई–मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

Books are available online at
http://books.jvbharati.org

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

तीसवां संस्करण : जून 2017

मूल्य : तीस रुपये मात्र

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

₹ 30/-

प्रकाशकीय

बाल्यावस्था जीवन की स्वर्णिम बेला है। इस अवस्था में जो संस्कार पड़ जाते हैं, भावी जीवन पर उसका अमिट प्रभाव रहता है। संस्कारों का मुख्य कारण संगति एवं पाठ्य-सामग्री है। यदि सत्-संगति व सत्-पाठ्यक्रम सामग्री का संयोग रहे तो बालक में जो संस्कारों के अंकुर उगेंगे, वे निर्मल और सात्त्विक होंगे। यदि इस ओर विपरीतता रही तो उसका जीवन सुसंस्कृत नहीं रहेगा। आज के विद्यार्थियों का उदाहरण हमारे सामने है। आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण विनय, शालीनता एवं अनुशासन जैसी सद्‌वृत्तियां उनमें दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। अतएव सबसे अधिक आवश्यक है, बालकों की सुकुमार बुद्धि में इन सद्‌गुणों को भरने का प्रयास किया जाय। क्योंकि जैसा उनका जीवन होगा, समाज और राष्ट्र का स्वरूप उससे भिन्न नहीं हो सकेगा। यह हर्ष का विषय है कि आज समूचे राष्ट्र का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है।

तत्त्व-ज्ञान में रूचि रखने वालों से यह छिपा नहीं है, जैन-दर्शन और साहित्य भारत की संयम प्रधान संस्कृति का अन्यतम अंग है। भारतीय वाङ्मय में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी शिक्षाएं जहां एक ओर उच्चतम त्याग और तपस्या के पथ का निर्देशन कराती है। वहां नागरिक जीवन के सन्निर्माण में भी उनका बहुत बड़ा उपयोग है। उसके तत्त्व व्यापक, असंकीर्ण और सार्वदेशिक है, जो जन-जन को जीवन-विज्ञान का सही बोध कराते हैं। जिन्हें आज लोक-भाषा और

जन साहित्य में रखने की महती आवश्यकता है। गुरुदेव श्री तुलसी के निर्देशन में इसी उद्देश्य को लेकर जैन विश्व भारती, समण संस्कृति संकाय ने जैन विद्या पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कराया है।

प्रस्तुत पुस्तक जैन विद्या प्रवेशिका प्रथम वर्ष के लिए निर्धारित पाठ्य पुस्तक है, पुस्तक के संकलन व संपादन में मुनि सुमेरमलजी 'सुदर्शन' की महती भूमिका रही है, अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

जैन विद्या के अध्ययन में बालक-बालिकाओं की रूचि निरन्तर वृद्धिंगत हो, यह मंगल कामना ।

निदेशक
समण संस्कृति संकाय
जैन विश्व भारती

अनुक्रम

कण्ठस्थ		
१. नमस्कार महामंत्र (अर्थ सहित)		१
२. वंदन पाठ	धर्म बोध भाग १ से	३
३. सामायिक पाठ	''	५
४. मंगल-पाठ	''	७
५. तीर्थंकर-परम्परा	''	९
६. तेरापंथ की आचार्य-परम्परा	''	१०
७. परमेष्ठी-वंदना	''	१२
८. पच्चीस बोल (१-१०)		१४
९. छात्र-प्रतिज्ञा	आचार्य तुलसी	१७
१०. संघ-गान	''	१८
११. सच्चे मानव	''	१९
इतिहास		
१२. भगवान् महावीर	मुनि किशनलाल	२०
१३. श्रीमद् भिक्षु स्वामी	धर्म बोध भाग १ से	२४
१४. आचार्य श्री तुलसी	मुनि सुदर्शन	२७
१५. आचार्य श्री महाप्रज्ञ	मुनि दुलहराज	३३
१६. आचार्य श्री महाश्रमण	मुनि राजेन्द्रकुमार	३९
सामान्य ज्ञान		
१७. जैन-धर्म	आचार्य तुलसी	४४

१८. तेरापंथ	''	४६
१९. प्रभात कार्य	धर्म बोध भाग १ से	४९
२०. देव, गुरु, धर्म	धर्म बोध भाग १ से	५१
२१. छह काय के जीव	''	५३
२२. सावद्य-निरवद्य	''	५६
२३. इन्द्रियां	''	५९
२४. वसुमती (१)	''	६२
२५. वसुमती (२)	''	६४
२६. विनय	''	६७
कथा-बोध		
२७. क्रोध को क्षमा से शांत करो	''	६९
२८. पाप से डरो	''	७१
२९. नमस्कार-मन्त्र का चमत्कार	''	७३

१

नमस्कार महामंत्र

णमो अरहंताणं	अरहन्तों को मेरा नमस्कार हो
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को मेरा नमस्कार हो
णमो आयरियाणं	धर्माचार्यों को मेरा नमस्कार हो
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो
णमो लोए सव्वसाहूणं।	लोक के सब साधुओं को मेरा नमस्कार हो ।

मन्त्र-महत्त्व

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावपणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मं हवइ मंगलं।।

अर्थ—यह नमस्कार महामन्त्र सब पापों का नाश करने वाला और सब मंगलों में पहला मंगल है।

नमस्कार महामन्त्र जैन धर्म का सबसे प्राचीन मन्त्र है। इसको सभी जैन मानते हैं । इस प्रातः स्मरणीय महामन्त्र में किसी व्यक्ति विशेष को नहीं, किन्तु महान् आत्माओं को नमस्कार किया गया है। वे महान् आत्माएं पांच प्रकार की होती हैं—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ।

१. जो आत्माएं राग-द्वेष रूप कर्म-शत्रुओं का नाश कर केवलज्ञान (संपूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर लेती हैं उन्हें अरहंत कहते हैं।

२. जो आत्माएं संपूर्ण कर्मों का नष्ट कर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती है उन्हें सिद्ध कहते हैं।

३. जो पांच महाव्रत - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का पालन करते हैं और जो संघ के अधिशास्ता होते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

४. जो स्वयं धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, जो दूसरों को उनका अध्यापन कराते हैं तथा जो आचार्य द्वारा नियुक्त हैं, उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

५. जो पांच महाव्रतों की सम्यग् अनुपालना करते हैं, उन्हें साधु कहते हैं।

इस महामंत्र में पांच पद और पैंतीस अक्षर हैं। पहले पद में सात, दूसरे पद में पांच, तीसरे पद में सात, चौथे पद में सात और पांचवें पद में नौ अक्षर हैं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये पांचों पंच-परमेष्ठी कहलाते हैं।

महामंत्र का जप उठते व सोते समय कम से कम पांच बार अवश्य करना चाहिए, इसका जाप बहुत लाभकारी होता है।

प्रश्न

१. नमस्कार महामंत्र को अर्थ सहित लिखो ।

२. नमस्कार महामंत्र में किन-किन को नमस्कार किया गया है ?

३. इस मंत्र के पद और अक्षर कितने हैं ?

४. नमस्कार मंत्र का महत्त्व क्या है ?

५. खाली स्थान को पूरा करें–

क. नमस्कार महामंत्र .... का नाश करने वाला है।

ख. नमस्कार महामंत्र में महान् .... को नमस्कार किया गया है।

ग. नमस्कार महामंत्र के ५वें पद में .... अक्षर होते हैं।

२

वन्दन-पाठ

तिक्खुत्तो	तीन बार
आयाहिणं	दाईं से बाईं ओर
पयाहिणं	प्रदक्षिणा
करेमि	करता हूं।
वंदामि	स्तुति करता हूं। (कैसे ?)
नमंसामि	नमस्कार करता हूं। (काया से)
सक्कारेमि	सत्कार करता हूं। (वचन से)
सम्माणेमि	सम्मान करता हूं । (मन से)
कल्लाणं	आप कल्याणकारी हैं।
मंगलं	मंगलकारी हैं।
देवयं	धर्मदेव हैं।
चेइयं	ज्ञानवान् हैं।
पज्जुवासामि	(मैं आपकी) उपासना करता हूं।
मत्थएण वंदामि	मस्तक झुकाकर वंदना करता हूं।

वन्दन-विधि

गुरु को वंदना नमस्कार करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इससे मन पवित्र होता है। पवित्र मन व्यक्ति को महान् बनाता है। हमारी वंदना विधि इस प्रकार है—पहले तीन बार प्रदक्षिणा दें। यह प्रदक्षिणा नाभि से मस्तक तक की जाए। उसके बाद वंदन मुद्रा में बैठकर 'वंदामि नमंसामि' से लेकर 'पज्जुवासामि' तक पूरे पाठ का स्पष्ट उच्चारण करें। 'मत्थएण वंदामि' पाठ बोलते समय श्वास भरें और उसे छोड़ते हुए

मस्तक को जमीन तक झुकाएं। इस प्रकार तीन बार ऊठ-बैठ कर वंदना करनी चाहिए। उसके बाद हाथ जोड़ सुखसाता पूछनी चाहिए। आचार्य तथा साधु-साध्वियों के लिए यह सम्मत वंदन-विधि है।

(वंदना करने का समय-सूर्योदय के आस-पास व सूर्यास्त के आस-पास श्रेष्ठ है।)

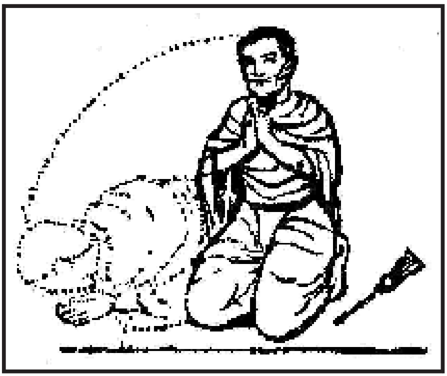

प्रश्न :

१. **वंदन-पाठ शुद्ध लिखो ।**

२. **प्रदक्षिणा कैसे और कितनी बार करनी चाहिए ?**

३. **वंदना करने की विधि क्या है ?**

४. **खाली स्थान को पूरा करें–**

क. वंदना करने से मन .... होता है।

ख. प्रदक्षिणा नाभि से .... तक ...... बार दी जाती है।

३

सामायिक पाठ

जैन धर्म का पहला उपदेश है—समता । समता का विकास व्यक्ति को महान् बनाता है।

जिस व्रत से समता का लाभ होता है उसका नाम है—सामायिक व्रत । समता का अर्थ है—सबके प्रति समभाव । समता के संकल्प को स्वीकार करने के लिए सामायिक पाठ पढ़ा जाता है। जैन धर्म में सामायिक का बहुत महत्त्व माना है। इसलिए बच्चों को सामायिक का अभ्यास करना चाहिए ।

करेमि भंते ! सामाइयं	भगवन् ! मैं सामायिक करता हूं।
सावज्जं जोगं	सावद्य योग (पापकारी प्रवृत्ति)
पच्चक्खामि	का प्रत्याख्यान करता हूं।
जाव-नियमं	सामायिक का जितना काल है
(मुहुत्तं एगं)	(एक मुहुर्त्त)
पज्जुवासामि	(उसका) पालन करता हूं।
दुविहं तिविहेणं	दो करण तीन योग से
न करेमि, न कारवेमि	न करूंगा, न कराऊंगा
मणसा, वयसा, कायसा	मन से, वचन से, काया (शरीर) से
तस्स भंते !	उन पूर्वकृत सावद्य योगों से भगवन् !
पडिक्कमामि	निवृत्त होता हूं।
निंदामि	उनकी निंदा करता हूं।
गरिहामि	उनकी गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूं।
अप्पाणं वोसिरामि	आत्मा को पाप से दूर करता हूं।

सामायिक आलोचना

नौवें सामायिक व्रत में जो कोई अतिचार (दोष) लगा हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं/करती हूं—

१. मन की सावद्य प्रवृत्ति की हो ।

२. वचन की सावद्य प्रवृत्ति की हो ।

३. शरीर की सावद्य प्रवृत्ति की हो ।

४. सामायिक के नियमों का पूरा पालन न किया हो ।

५. अवधि से पहले सामायिक को पूरा किया हो ।

तस्स मिच्छामि दुक्कडं—इनसे लगे मेरे पाप मिथ्या हों—निष्फल हों।

(सामायिक का काल एक मुहुर्त्त—४८ मिनट का होता है)

सामायिक के उपकरण, सामायिक कैसे की जाती है, यह १७वें पाठ में बताया गया है।

प्रश्न :

१. सामायिक पाठ को शुद्ध लिखो।

२. सामायिक में किस बात का त्याग किया जाता है ?

३. सामायिक का कालमान कितना है ?

४. सामायिक कितने करण-योग से की जाती है ?

५. सामायिक के पांच अतिचार कौन-से हैं ?

६. करण और योग किसे कहते हैं ?

४

मंगल-पाठ

चत्तारि मंगलं	मंगल चार हैं—
अरहंता मंगलं	अरहंत मंगल हैं,
सिद्धा मंगलं	सिद्ध मंगल हैं,
साहू मंगलं	साधु मंगल हैं,
केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं।	केवल-भाषित धर्म मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा	चार लोक में उत्तम है—
अरहंता लोगुत्तमा	अरहंत लोक में उत्तम हैं,
सिद्धा लोगुत्तमा	सिद्ध लोक में उत्तम हैं,
साहू लोगुत्तमा	साधु लोक में उत्तम हैं,
केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।	केवलि-भाषित धर्म लोक में उत्तम है।
चत्तारि सरणं पवज्जामि	मैं चारों की शरण में जाता हूं—
अरहंते सरणं पवज्जामि	मैं अरहंतों की शरण में जाता हूं
सिद्धे सरणं पवज्जामि	मैं सिद्धों की शरण में जाता हूं
साहू सरणं पवज्जामि	मैं साधु की शरण में जाता हूं ।
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।	मैं केवलि-भाषित धर्म की शरण स्वीकार करता हूं।

प्रत्येक प्राणी मंगल की कामना करता है। वह उसके लिए प्रयत्न भी करता है, परन्तु सच्चे मंगल को बहुत कम व्यक्ति ही पहचानते हैं। साधारण लोग नारियल, दूध, चावल आदि को मंगल मानते हैं। ये लौकिक मंगल कहलाते हैं। अध्यात्म-जगत् में अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म को मंगल कहा जाता है। सचमुच यह मंगल पाठ शक्तिशाली

मंत्र है। इसको सुनते ही काम करने का विश्वास, आत्मबल और उत्साह जागता है। जैन धर्म में मंगल-पाठ को नमस्कार मन्त्र की तरह ही मन्त्र माना जाता है। इसलिए इस मंगल पाठ को सदा याद रखना चाहिए । प्रत्येक मांगलिक कार्य से पूर्व इसका स्मरण हितकर होता है। इसके साथ बच्चों को यह श्लोक भी याद करना चाहिए –

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं स्थूलिभद्राद्याः, जैन धमोऽस्तु मंगलम्।।

प्रश्न :

१. चार मंगल कौन-कौन से हैं ?
२. मंगल पाठ शुद्ध लिखो ।
३. शरण किसकी लेनी चाहिए ?
४. लौकिक मंगल कौन-से हैं ?
५. खाली स्थान को पूरा करें –

क. मंगल पाठ .... मंत्र है।
ख. मंगल पाठ को .... मंत्र की तरह .... जाता है।
ग. प्रत्येक मांगलिक कार्य से पूर्व .... सुनना चाहिए ।

५

तीर्थंकर-परम्परा

तीर्थंकर का अर्थ है—तीर्थ की स्थापना करने वाला । साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्मसंघ को तीर्थ कहा जाता है। उसकी स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर को भगवान्, जिन, अर्हत्, देवाधिदेव भी कहा जाता है। अनादि काल से चले आ रहे जैन धर्म का प्रवर्तन इस युग में भगवान् ऋषभदेव ने किया। वे प्रथम तीर्थंकर थे। उनके पश्चात् अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकर हुए। भगवान् महावीर इस युग के अंतिम तीर्थंकर थे। तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं :-

१.	**भगवान्**	**ऋषभदेव**	**१३.**	**भगवान्**	**विमलनाथ**
२.	''	**अजितनाथ**	**१४.**	''	**अनन्तनाथ**
३.	''	**सम्भवनाथ**	**१५.**	''	**धर्मनाथ**
४.	''	**अभिनन्दन**	**१६.**	''	**शान्तिनाथ**
५.	''	**सुमतिनाथ**	**१७.**	''	**कुंथुनाथ**
६.	''	**पद्मप्रभ**	**१८.**	''	**अरनाथ**
७.	''	**सुपार्श्वनाथ**	**१९.**	''	**मल्लिनाथ**
८.	''	**चंदप्रभ**	**२०.**	''	**मुनि सुव्रत**
९.	''	**सुविधिनाथ**	**२१.**	''	**नमिनाथ**
१०	''	**शीतलनाथ**	**२२.**	''	**अरिष्टनेमि**
११.	''	**श्रेयांसनाथ**	**२३.**	''	**पार्श्वनाथ**
१२.	''	**वासुपूज्य**	**२४.**	''	**महावीर**

प्रश्न :

१. तीर्थंकर किसे कहते हैं ?
२. सातवें, आठवें तथा इक्कीसवें तीर्थंकर के नाम बताओ ।
३. चौबीस तीर्थंकरों के नाम लिखो।
४. शान्तिनाथ कौन-से तीर्थंकर थे ?
५. कुन्थुनाथ का नम्बर कौन-सा है ?
६. तीर्थंकर को अन्य किन नामों से पुकारा जाता है।

६

तेरापंथ की आचार्य-परम्परा

भगवान् महावीर ने संघ को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए नौ गणों की व्यवस्था की । नौ गणों के ११ गणधर थे। उनमें अंतिम दो गणों के क्रमशः दो-दो गणधर थे। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् गणधर सुधर्मा स्वामी उनके उत्तराधिकारी बने। सुधर्मा स्वामी के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य जम्बूकुमार ने गण का भार सम्भाला । उनके पश्चात् अनेक आचार्य हुए जिन्होंने जैन-शासन की अच्छी प्रभावना की ।

विक्रम सं. १८१७ केलवा (राजस्थान, जिला उदयपुर) में आचार्य भीखणजी ने तेरापंथ धर्मसंघ की स्थापना की । वे तेरापंथ के प्रथम आचार्य हुए । आज तक तेरापंथ के दस आचार्य हो चुके हैं। वर्तमान में ग्यारहवें आचार्य के पद को सुशोभित कर रहे हैं आचार्य महाश्रमण। वर्तमान शासन इनके नेतृत्व में गतिशील है। दस आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—

	जन्म	**प्रयाण**
१. आचार्य श्री भीखणजी	सं. १७८३	१८६०
२. आचार्य श्री भारमलजी	सं. १८०३	१८७८
३. आचार्य श्री रायचन्दजी (ऋषिराय)	सं. १८४७	१९०८
४. आचार्य श्री जीतमलजी (जयाचार्य)	सं. १८६०	१९३८
५. आचार्य श्री मघराजजी	सं. १८९७	१९४९
६. आचार्य श्री माणकलालजी	सं. १९१२	१९५४
७. आचार्य श्री डालचंदजी	सं. १९०९	१९६६

८.	आचार्य श्री कालूरामजी	सं. १९३३	१९९३
९.	आचार्य श्री तुलसी	सं. १९७१	२०५४
१०.	आचार्य श्री महाप्रज्ञ	सं. १९७७	२०६७

विक्रम संवत् २०५० माघशुक्ला ७ को सुजानगढ़ (जिला चुरू, राजस्थान) में नौंवे आचार्य श्री तुलसी ने युवाचार्य महाप्रज्ञ को नई परम्परा का सृजन करते हुए दसवें आचार्य के रूप में उद्घोषित किया । वर्तमान में ग्यारहवें आचार्य महाश्रमणजी है।

प्रश्न :

१. तेरापंथ के दस आचार्यों के नाम बताओ ।

२. भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद गण का भार किसने संभाला ?

३. तेरापंथ के पांचवें आचार्य कौन थे ?

४. तेरापंथ की स्थापना कहां व कब हुई ?

७

परमेष्ठी-वन्दना

वन्दना आनन्द-पुलकित, विनयनत हो मैं करूं ।
एक लय हो, एक रस हो, भाव-तन्मयता वरूं ।।

१. णमो अरहंताणं

सहज निज आलोक से भासित स्वयं संबुद्ध हैं,
धर्म-तीर्थंकर, शुभंकर, वीतराग, विशुद्ध हैं।
गति-प्रतिष्ठा, त्राणदाता, आवरण से मुक्त हैं,
देव अर्हन् दिव्य-योगज अतिशयों से युक्त हैं।।

२. णमो सिद्धाणं

बंधनों की श्रृंखला से मुक्त शक्ति-स्रोत हैं,
सहज निर्मल, आत्म-लय में सतत ओत-प्रोत हैं।
दग्ध कर भव-बीज-अंकुर अरुज, अज अविकार हैं,
सिद्ध परमात्मा परम ईश्वर अपुनरवतार हैं ।।

३. णमो आयरियाणं

अमलतम आचार-धारा में स्वयं निष्णात हैं,
दीप सम शत दीप दीपन के लिए प्रख्यात हैं।
धर्म—शासन के धुरंधर धीर धर्माचार्य हैं,
प्रथम पद के प्रवर प्रतिनिधि प्रगति में अनिवार्य हैं।।

४. णमो उवज्झायाणं

द्वादशांगी के प्रवक्ता, ज्ञान-गरिमा-पुंज हैं,
साधना के शांत उपवन में सुरम्य निकुंज हैं।
सूत्र के स्वाध्याय में संलग्न रहते हैं सदा,
उपाध्याय महान् श्रुतधर, धर्म-शासन-सम्पदा।।

५. णमो लोए सव्वसाहूणं

लाभ और अलाभ में, सुख-दुःख में मध्यस्थ हैं,
शांतिमय, वैराग्यमय, आनंदमय आत्मस्थ हैं।
वासना से विरत आकृति, सहज परम प्रसन्न हैं,
साधना-धन साधु अंतर्भाव में आसन्न हैं॥

परमेष्ठी वन्दना के रचनाकार आचार्य तुलसी हैं। इसमें पांचों परमेष्ठियों के गुणों का वर्णन किया गया है। इसको कण्ठस्थ रखते हुए सुबह-शाम दोनों समय परमेष्ठी वंदना करनी चाहिए ।

प्रश्न :

१. इस वन्दना में किन-किन को वंदना की गई है ?

२. परमेष्ठी वन्दना के दूसरे पद्य की तीसरी पंक्ति कौन-सी है ?

३. 'साधना के शांत उपवन में ....' पद को पूरा करो ।

४. परमेष्ठी वंदना का तीसरा पद लिखो ।

५. परमेष्ठी वंदना के रचनाकार का नाम बताओ ।

८

पच्चीस बोल

१. पहला बोल - गति चार

१. नरकगति
२. तिर्यंचगति
३. मनुष्यगति
४. देवगति ।

२. दूसरा बोल - जाति पांच

१. एकेन्द्रिय
२. द्वीन्द्रिय
३. त्रीन्द्रिय
४. चतुरिन्द्रिय
५. पञ्चेन्द्रिय

३. तीसरा बोल - काया छह

१. पृथ्वीकाय
२. अप्काय
३. तेजस्काय
४. वायुकाय
५. वनस्पतिकाय
६. त्रसकाय ।

४. चौथा बोल - इन्द्रिय पांच

१. स्पर्शनेन्द्रिय
२. रसनेन्द्रिय
३. घ्राणेन्द्रिय
४. चक्षुरिन्द्रिय
५. श्रोत्रेन्द्रिय।

५. पांचवां बोल - पर्याप्ति छह

१. आहार-पर्याप्ति
२. शरीर-पर्याप्ति
३. इन्द्रिय-पर्याप्ति
४. श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति
५. भाषा-पर्याप्ति
६. मनः पर्याप्ति

६. छठा बोल - प्राण दश

१. श्रोत्रेन्द्रिय प्राण
२. चक्षुरिन्द्रिय प्राण
३. घ्राणेन्द्रिय प्राण
४. रसनेन्द्रिय प्राण

५. स्पर्शनेन्द्रिय प्राण
६. मनोबल
७. वचनबल
८. कायबल
९. श्वासोच्छ्वास प्राण
१०. आयुष्य प्राण

७. सातवां बोल - शरीर पांच

१. औदारिक शरीर
२. वैक्रिय शरीर
३. आहारक शरीर
४. तैजस शरीर
५. कार्मण शरीर ।

८. आठवां बोल - योग पन्द्रह

मनो योग के चार भेद

१. सत्य-मनोयोग
२. असत्य मनोयोग
३. मिश्र-मनोयोग
४. व्यवहार-मनोयोग

वचन योग के चार भेद

५. सत्य-वचनयोग
६. असत्य-वचनयोग
७. मिश्र-वचनयोग
८. व्यवहार-वचनयोग ।

काय योग के सात भेद

९. औदारिक-काययोग
१० औदारिक-मिश्र-काययोग
११. वैक्रिय-काययोग
१२. वैक्रिय-मिश्र-काययोग
१३. आहारक-काययोग
१४.आहारक-मिश्र-काययोग
१५. कार्मण-काययोग

९. नौंवा बोल - उपयोग बारह

पांच ज्ञान–

१. मतिज्ञान
२. श्रुतज्ञान
३. अवधिज्ञान
४. मनःपर्यवज्ञान
५. केवलज्ञान

तीन अज्ञान–

६. मतिअज्ञान
७. श्रुतअज्ञान
८. विभंगअज्ञान

चार दर्शन–

९. चक्षु दर्शन
१०. अचक्षुदर्शन
११. अवधिदर्शन
१२. केवलदर्शन ।

१०. दसवां बोल - कर्म आठ

१. ज्ञानावरणीय कर्म
२. दर्शनावरणीय कर्म
३. वेदनीय कर्म
४. मोहनीय कर्म
५. आयुष्य कर्म
६. नाम कर्म
७. गोत्र कर्म
८. अंतराय कर्म ।

९

छात्र-प्रतिज्ञा

जीवन हम आदर्श बनाएं, उन्नति-पथ पर बढ़ते जाएं।
क्यों न छात्र गुण-पात्र कहाएं? जीवन हम आदर्श बनाएं।।

१. उच्च-उच्च आचरण वरेंगे, दुराचार से सदा डरेंगे।
आत्म-शक्ति का परिचय देंगे, नहीं कहीं दुर्बलता लाएं।।

२. संयम-झूले में झूलेंगे, तत्त्व अहिंसा को छू लेंगे।
नहीं नम्रता को भूलेंगे, अनुशासन के नियम निभाएं।।

३. नहीं किसी को गाली देंगे, नहीं किसी से घृणा करेंगे।
बोल जबान नहीं बदलेंगे, पद-लोलुपता नहीं सताएं ।।

४. झूठ-कपट से सदा बचेंगे, जुआ-चोरी नहीं रचेंगे।
पर-निन्दा में नहीं पचेंगे, आत्म-विजय ही लक्ष्य बनाएं।।

५. मद्यपान में नहीं पड़ेंगे, भांग तम्बाकू से न भिड़ेंगे।
बुरी आदतों (के) साथ लड़ेंगे, ईर्ष्या-मत्सर-मान मिटाएं।।

६. आस्तिकता को आश्रय देंगे, नास्तिकता न पनपने देंगे।
त्याग-मार्ग में तन-मन देंगे, सद्गुरु में श्रद्धा रख पाएं।।

७. सहनशील बन वीर बनेंगे, सच्ची अच्छी सीख सुनेंगे।
धार्मिकता का पाठ पढ़ेंगे, 'तुलसी' अणुव्रत-पथ पर आएं ।।

प्रश्न :

१. 'छात्र-प्रतिज्ञा' का पांचवां पद कौन-सा है ?

२. इस गीतिका के अनुसार आदर्श छात्र में कौन-कौन से गुण होने चाहिए?

३. 'नहीं किसी से घृणा करेंगे'—इससे सम्बन्धित पद को पूरा लिखो ।

४. 'छात्र-प्रतिज्ञा' का दूसरा व चौथा पद लिखो ।

१०

संघ-गान

जय-जय धर्म-संघ अविचल हो,
संघ-संघपति–प्रेम अटल हो ।।

१. हम सबका सौभाग्य खिला है, प्रभु यह तेरापंथ मिला है।
एक सुगुरु के अनुशासन में, एकाचार विचार विमल हो।।

२. दृढ़तर, सुन्दर, संघ-संगठन, क्षीर-नीर-सा यह एकीपन।
है अक्षुण्ण संघ-मर्यादा, विनय और वात्सल्य अचल हो।।

३. संघ-सम्पदा बढ़ती जाये, प्रगति-शिखर पर चढ़ती जाये।
भैक्षव-शासन नन्दनवन की, सौरभ से सुरभित भूतल हो।।

४. 'तुलसी' जय हो सदा विजय हो, संघ चतुष्टय बल अक्षय हो।
श्रद्धा भक्ति बहे नस-नस में, पग-पग पर प्रतिपल मंगल हो।।

प्रश्न :

१. 'है अक्षुण्ण संघ-मर्यादा'–इससे सम्बन्धित पद पूरा करो ।

२. संघ-गान के चौथे पद की तीसरी पंक्ति लिखो ।

३. संघ-गान का तीसरा पद लिखो ।

४. संघ-गान के रचयिता कौन हैं ?

११

सच्चे मानव

सच्चे मानव हम बन पायें,
फूंक-फूंक कर पैर बढ़ायें, बाधाओं को दूर हटायें ।
दे तिलाञ्जलि स्वार्थ-भाव को, परम अर्थ के पथ पर जायें ॥
सच्चे मानव हम बन पायें,
क्रोध हमारा सबसे बढ़कर, दुश्मन उसको दूर भगायें ।
क्षमा हमारा परम धर्म है, उसके खातिर प्राण लगायें ॥
सच्चे मानव हम बन पायें,
मानव बनकर नहीं कभी हम, पशुता की गणना में आयें।
बुद्धि-ज्ञान विवेक तर्क को, भारभूत हम नहीं बनायें॥
सच्चे मानव हम बन पायें,
न्याय-मार्ग पर अटल रहें नित, नहीं किसी से वैर बढ़ाएं ।
सत्य अहिंसा-शैल-शिखर पर, चढ़कर मनसा मौद मनायें ॥
सच्चे मानव हम बन पायें[१],

प्रश्न :

१. तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु कौन है ?
२. तिलांजलि किसे देनी चाहिए ?
३. कविता के दो पद लिखो ।
४. हमारा परम धर्म क्या है ?

---

१. इसके रचनाकार आचार्य तुलसी हैं।

१२

भगवान् महावीर

जन्म और नाम

संसार के महापुरुषों में भगवान् महावीर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर थे ।

आज से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व बिहार में वैशाली गणतन्त्र था। उसमें 'क्षत्रिय कुंडग्राम' नाम का एक नगर था। उस नगर के अधिपति क्षत्रिय सिद्धार्थ थे। उनकी पत्नी का नाम त्रिशला था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन त्रिशला ने एक बालक को जन्म दिया। बालक का नाम 'वर्धमान' रखा गया । भगवान् महावीर के तीन नाम थे—वर्धमान, महावीर और ज्ञातपुत्र । जिस दिन वे जन्मे थे, उस दिन से उनके घर में ऐश्वर्य की खूब वृद्धि हुई, इसीलिए वे वर्धमान कहलाए । उन्होंने साधना-काल में कष्टों को वीर-वृत्ति से सहन किया, इसलिए वे 'महावीर' कहलाए। उनका वंश ज्ञात था, इसलिए वे 'ज्ञातपुत्र' कहलाए। भगवान् महावीर के बड़े भाई का नाम नन्दीवर्धन और बहिन का नाम सुदर्शना था।

बचपन और शिक्षा

राजकुमार वर्धमान का लालन-पालन राजमहलों में हुआ। उनका बचपन बाल-क्रीड़ाओं में बीता। महावीर बचपन से ही निर्भीक थे। एक बार खेलते समय एक सांप बीच में आ गया। उन्होंने उसे हाथ से पकड़ कर फेंक दिया और पुनः खेलने लगे। आठ वर्ष के होते ही माता-पिता ने शिक्षा के लिए उनको गुरुकुल में भेजा। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी।

वे बचपन से ही तीन (मति, श्रुत, अवधि) ज्ञान के धनी थे।

यौवन

वर्धमान बाल्य-अवस्था को पार कर किशोर-अवस्था में आए। वे सहज वैरागी थे। विवाह करने की इच्छा नहीं थी, पर माता-पिता के आग्रह से उन्होंने क्षत्रिय-कन्या यशोदा के साथ विवाह किया। महावीर के एक पुत्री हुई। उसका नाम प्रियदर्शना रखा गया। उसका विवाह सुदर्शना के पुत्र जमाली के साथ हुआ।

वैराग्य और दीक्षा

महावीर जब २८ वर्ष के हुए तब उनके पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला का स्वर्गवास हो गया। महावीर ने श्रमण बनने के लिए बड़े भाई नन्दीवर्धन से अनुमति मांगी। नन्दीवर्धन ने श्रमण बनने की आज्ञा नहीं दी और घर पर ही रहने का आग्रह किया । महावीर बड़े भाई के अधिक आग्रह से दो वर्ष तक घर में रहे। उस समय वे सचित्त जल नहीं पीते थे, रात्रि भोजन नहीं करते थे, ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और ३० वर्ष पूरे होते ही महावीर श्रमण बन गए ।

साधना-काल

साधना-काल में भगवान् ने अनेक कष्ट सहे। कुछ लोग उन्हें चोर समझ कर पीटने लग जाते। बच्चे पत्थरों से मारते, कुत्तों को काटने के लिए प्रेरित करते, चंडकौशिक सर्प ने भीषण डंक लगाए। संगम नामक देव ने भगवान् को एक रात्रि में २० मारणान्तिक (मृत्यु हो जाए ऐसे) कष्ट दिए। भगवान् क्षमाशूर थे। उन्होंने सब कुछ समभाव से सहन किया। भगवान् ने कठोर तप तपा। उन्होंने दो दिन के उपवास से लेकर छह महीने तक की तपस्या की तथा तपस्या में पानी भी ग्रहण नहीं किया।

कैवल्य-प्राप्ति

दीर्घ तपस्या के साथ-साथ भगवान् महावीर ध्यान से आत्मा को भावित कर रहे थे। साधना-काल में बहुत कम बोलते थे, अधिकतर वे मौन ही रहते थे। इस प्रकार १२ वर्ष और १३ पक्ष तक वे साधना करते रहे। वैशाख शुक्ला १० के दिन जंभियग्राम में आएं। वहां 'ऋजुबालिका' नदी थी। उसके किनारे शाल वृक्ष था। उसके नीचे वे गोदोहिका आसन में ध्यानस्थ थे। उस समय उनके दो दिन का उपवास था। ज्ञान की पवित्रता बढ़ी, मोह का आवरण हटा और भगवान वीतराग हो गए। अब वे केवलज्ञान को पाकर अरहन्त बन गए।

कैवल्य-प्राप्ति के बाद

केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भगवान् का पहला प्रवचन देवों के बीच हुआ। भगवान् ने संयम की महत्ता पर प्रकाश डाला। देव विलासी होते हैं, वे संयम को स्वीकार नहीं कर सकते। दूसरा उपदेश पावापुरी में हुआ। वहां यज्ञ में इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण विद्वान अपने हजारों शिष्यों के साथ भाग लेने के लिए आए हुए थे। वे भगवान के समवसरण (प्रवचन-स्थल) में गए। भगवान् ने उनके मन में रहे सन्देहों को दूर किया। वे सभी ग्यारह पंडित अपने ४४०० शिष्यों के साथ भगवान् के पास दीक्षित हो गए । चन्दनबाला आदि अनेक स्त्रियां भी दीक्षित हुईं। पहले ही दिन भगवान का शिष्य-परिवार बहुत बढ़ गया। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध तीर्थ की स्थापना हुई।

इन्द्रभूति आदि ग्यारह पंडितों को भगवान् ने गण का भार दिया। वे सब 'गणधर' कहलाए। साध्वियों का भार साध्वी चन्दनबाला को दिया ।

भगवान् का निर्वाण

भगवान् तीस वर्ष तक केवली अवस्था में विचरण करते रहे। आपने अनेक राजाओं को जैन शासन में प्रव्रजित किया।

आपका अन्तिम पावस (चतुर्मास) 'बिहार प्रान्त' के पावापुरी नगर में था। वहां अंतिम अवस्था में भगवान् ने दो दिन का उपवास किया। वे दो दिन-रात तक प्रवचन करते रहे, कार्तिक कृष्णा अमावस्या की मध्यरात्रि में आपका निर्वाण हो गया। आप सभी बन्धनों से मुक्त हो गए। दीप जलाकर लोगों ने उत्सव मनाया। वह उत्सव दीपावली के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

प्रश्न :

१. भगवान् महावीर का जन्म कब और कहां हुआ ?

२. भगवान् महावीर के कितने नाम थे ?

३. भगवान् के साधनाकाल का वर्णन करो ।

४. भगवान् को केवलज्ञान कहां हुआ ?

५. दीपावली क्यों मनाई जाती है ?

६. ग्यारह पंडितों के कितने शिष्य थे ?

७. चतुर्विध तीर्थ का क्या अर्थ है ?

१३

श्रीमद् भिक्षु स्वामी

तेरापंथ के प्रवर्तक श्रीमद् भिक्षु स्वामी का जन्म वि. सं. १७८३, आषाढ़ शुक्ला १३ (१ जुलाई, १७२६) को कंटालिया (मारवाड़) में हुआ। आपके पिता का नाम बल्लूजी तथा माता का नाम दीपांजी था। आपकी जाति ओसवाल तथा वंश संकलेचा था। आप प्रतिभाशाली धार्मिक व्यक्ति थे। पत्नी का देहान्त हो जाने पर आप अकेले ही दीक्षा लेने को उद्यत हुए, परन्तु आपकी माता ने दीक्षा की आज्ञा नहीं दी। तत्कालीन स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रुघनाथजी के समझाने पर माता ने कहा—'महाराज ! मैं इसे दीक्षा की अनुमति कैसे दूं ? क्योंकि जब यह गर्भ में था तब मैंने सिंह का स्वप्न देखा था, इसलिए यह सिंह जैसा पराक्रमी होगा ।' तब आचार्य रुघनाथजी ने कहा—'बाई ! यह तो बहुत अच्छी बात है। तेरा बेटा साधु बनकर सिंह की तरह गूंजेगा।' इस प्रकार उनके समझाने पर माता ने राजी होकर दीक्षित होने की आज्ञा दे दी। आपने वि. सं. १८०८ मृगसिर कृष्णा १२ (सन् १७५१) को बगड़ी (मारवाड़) में उनके पास दीक्षा ग्रहण की।

आपकी दृष्टि पैनी थी । तत्त्व की गहराई में पैठना आपके लिए स्वाभाविक बात थी। आप थोड़े ही वर्षों में जैन शास्त्रों में पारंगत पण्डित बन गए। वि. सं. १८१५ के आस-पास आपके मस्तिष्क में साधु-वर्ग की आचार-विचार सम्बन्धी शिथिलता के

प्रति एक क्रांति की भावना पैदा हुई । आपने अपने क्रान्तिपूर्ण विचारों को आचार्य रुघनाथजी के सामने रखा । दो वर्ष तक विचार-विमर्श होता रहा पर कोई संतोषजनक निर्णय नहीं हुआ तब आप वि. सं. १८१७ चैत्र शुक्ला ९ को बगड़ी में उनसे पृथक् हो गए। आपने अपना पहला पड़ाव गांव के बाहर श्मसान में जैतसिंहजी की छतरियों में किया। वे छतरियां आज भी विद्यमान हैं।

स्थान-स्थान पर आचार्य भिक्षु का विरोध होने लगा। वे विरोध को समभाव से सहते हुए विचरण करते रहे।

वि.सं. १८१७ आषाढ़ शुक्ला १५ (सन् १७६०) के दिन केलवा (मेवाड़) में आपने पुनः शास्त्र-सम्मत दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपके आदेश में १२ साधु थे। कई आपकी सेवा में और कई दूसरी जगह थे। उसी दिन से स्वामीजी के नेतृत्व में एक सुसंगठित साधु-संघ का सूत्रपात हुआ और थोड़े समय के बाद संघ 'तेरापंथ' के नाम से प्रख्यात हो गया। वि. सं. १८३१ तक का आपका जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा। वह १५ वर्ष का समय तपस्या, कठोर साधना एवं संघ की भावी रूपरेखा का चिंतन और शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करने में बीता ।

वि. संवत् १८३२ में आपने अपने प्रमुख शिष्य भारमलजी को युवाचार्य-पद दिया और उसके साथ-साथ संघीय मर्यादाओं का भी सूत्रपात किया। आपने पहला मर्यादा-पत्र उसी वर्ष मृगसिर कृष्णा ७ को लिखा। उसके बाद समय-समय पर आप नए-नए नियमों से संघ को सुदृढ़ करते रहे। आपके शासन-काल में ४९ साधु और ५६ साध्वियां दीक्षित हुईं। उनमें आचार्य भारमलजी, मुनिश्री थिरपालजी, फतेहचन्दजी, हरनाथजी, टोकरजी, खेतसीजी, वेणीरामजी, हेमराजजी आदि साधु उल्लेखनीय हैं।

वि. सं. १८६० सिरियारी (मारवाड़) में भाद्रव शुक्ला १३ (सन् १८०३) के दिन सातप्रहर के अनशन में आपकी समाधिपूर्वक मृत्यु हुई। उस समय आपकी आयु ७७ वर्ष की थी।

प्रश्न :

१. भिक्षु स्वामी के जन्म का वर्ष और तिथि बताओ ।

२. स्वामीजी की माता ने दीक्षा की अनुमति देने में हिचकिचाहट क्यों की ?

३. स्वामीजी ने दीक्षा किसके पास ली ?

४. स्वामीजी स्थानकवासी सम्प्रदाय से पृथक कहां और कब हुए ?

५. उल्लेखनीय संतों में कोई चार नाम बताओ ।

१४

आचार्य श्री तुलसी

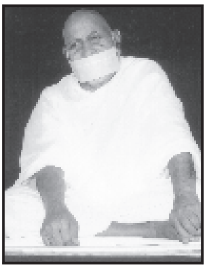

जन्म और परिवार

अणुव्रत अनुशास्ता युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी का जन्म वि. सं. १९७१, (२० अक्टूबर, १९१४) कार्तिक शुक्ला द्वितीया को लाडनूं (राज.) में हुआ । आपके पिता का नाम झूमरमलजी खटेड़ व माता का नाम वदनांजी था। उनके छह पुत्र तथा तीन पुत्रियां थीं जिनमें आप सबसे छोटे थे। आपके बड़े भ्राता चम्पालालजी पहले ही मुनि बन गए थे। आपके पारिवारिक लोग सहज धर्मानुरागी थे। वदनांजी की विशेष प्रेरणा-स्वरूप घर के सभी बच्चे सत्संग आदि में आया करते थे। आपके मन में बचपन से ही सत्संग व साधु-चर्या के प्रति अनुराग था। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी का आगमन लाडनूं में हुआ। पूज्य श्री कालूगणी के दिव्य प्रवचन तथा व्यक्तित्व ने बालक तुलसी के पूर्व अर्जित संस्कारों को जागृत कर दिया। उनके मन में मुनि-जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ।

एक परीक्षण

एक दिन आपने अपनी माताजी से कहा—मेरा मन तो कालूगणी के चरणों में ही रहना चाहता है। बातों-बातों में आपने इस प्रकार अपनी भावना माताजी के समक्ष प्रस्तुत की । बाल-स्वभाव समझ कर घरवालों ने उसे टाल दिया, किन्तु आप अपने विचारों पर स्थिर थे। वैराग्य और साधना का क्रम बढ़ने लगा । बड़े भाई मोहनलालजी ने आपका सच्चा वैराग्य है या नहीं, इसकी अनेक प्रकार से परीक्षा की ।

परीक्षा में आप उत्तीर्ण हुए । भौतिक प्रलोभन आपको नहीं डिगा सके। कालूगणी ने आपको दीक्षित करने की घोषणा कर दी ।

एक दिन रात्रि में भी मोहनलालजी ने १०० रुपये का नोट देते हुए आपसे कहा—तुलसी ! तुम दीक्षा लेने जा रहे हो, साधना में अनेक कठिनाईयां आती हैं। कहीं भोजन नहीं मिलता, कहीं प्यासा रहना होता है । तुम अभी बालक हो । कभी ऐसा अवसर आ जाये, तब इन रुपयों का उपयोग कर लेना । यह तुम्हारे पढ़ने के कागजों में पड़ा रहेगा।

अपने बड़े भाई की बात सुनकर आपने मुस्कुराकर कहा—'भाईजी ! यह तो परिग्रह है, साधु को परिग्रह रखना कल्पता नहीं।' अब मोहनलालजी को पूर्ण विश्वास हो गया कि इनका वैराग्य सच्चा है।

दीक्षा संस्कार

आचार्य श्री कालूगणी के कर-कमलों से हजारों लोगों की परिषद् में वि. सं. १९८२ (सन् १९२५) पौष कृष्णा ५ को आपका दीक्षा-संस्कार लाडनूं में सम्पन्न हुआ। आपके साथ आपकी बड़ी बहिन लाडांजी भी दीक्षित हुईं जो आगे चलकर तेरापंथ संघ की सातवीं साध्वी-प्रमुखा हुईं।

अध्ययन

आपको बचपन से ही अध्ययन में अनुराग रहा। अपनी कक्षा में आप सदा ही मेधावी छात्र रहे । मुनि बनते ही आप अपना सारा समय अध्ययन में लगाने लगे । मुनि-जीवन के थोड़े वर्षों में ही आपने व्याकरण, कोष, साहित्य, दर्शन तथा जैनागमों का अच्छी तरह अध्ययन कर लिया । अध्ययन के साथ-साथ आप बाल-मुनियों को अध्यापन भी कराते । आप कुशल अध्यापक भी रहे हैं।

युवाचार्य की नियुक्ति

वि. सं. १९९३, (सन् १९३६) में आचार्य कालूगणी का चातुर्मासिक प्रवास गंगापुर में था । वहां गुरुदेव का शरीर रोग से पीड़ित हो गया । शरीर की स्थिति देखकर आचार्यश्री ने भाद्रव शुक्ला ३ को युवाचार्य की नियुक्ति का पत्र लिखा। उसके तुरन्त पश्चात् उसी दिन युवाचार्य की पछेवड़ी (उत्तरीय) मुनि तुलसी को धारण करवाई और जनता को वह ऐतिहासिक उत्तराधिकार पत्र पढ़कर सुनाया। मुनि तुलसी युवाचार्य घोषित हुए। चतुर्विध संघ ने अत्यंत उल्लास के साथ युवाचार्य का स्वागत किया । समूचा संघ योग्य धर्मनेता को पाकर आश्वस्त बन गया।

आचार्यश्री का युवाचार्य काल केवल चार दिन रहा। भाद्रव शुक्ला ६ को पूज्य श्री कालूगणी का स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी अवस्था २२ वर्ष की थी । उस छोटी अवस्था में आप विशाल तेरापंथ-संघ के आचार्य बने। उस समय तेरापंथ-संघ में १३९ साधु व ३३३ साध्वियां थी।

महान् आचार्य

आचार्य-पद का गुरुतर भार आते ही आपने संघ में शिक्षा का अत्यधिक प्रसार किया, जिसका परिणाम है कि आज संघ में अनेक विद्वान् साधु-साध्वियां विद्यमान हैं। अध्यापन का कार्य स्वयं आचार्यश्री व साधु-साध्वियां कराते थे।

अणुव्रत आन्दोलन

जनता के नैतिक उत्थान के लिए आचार्यश्री ने विक्रम संवत् २००५ (सन् १९४८) फाल्गुन शुक्ला २ को सरदारशहर में अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया।

यात्राएं

अणुव्रत आन्दोलन को घर-घर पहुंचाने के लिए आचार्यश्री ने दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि प्रांतों की यात्राएं कीं। इससे धर्म-संघ को जानने का भी लोगों को अवसर मिला । हजारों व्यक्तियों ने अणुव्रत को जीवन-व्यवहार में उतारा, जिससे राष्ट्र में एक नैतिक वातावरण बना। इस वातावरण को अधिक शक्तिशाली और गति देने के लिए आचार्यश्री ने दक्षिण भारत की यात्रा की । दक्षिण भारत के महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु, केरल आदि सभी प्रांतों की यात्रा की एवं मुख्य नगरों में अणुव्रत आन्दोलन एवं जैन धर्म का भव्य स्वागत हुआ। हजारों मील की इस लम्बी ऐतिहासिक यात्रा की परिसम्पन्नता पर वि. सं. २०२७ (सन् १९७०) बीदासर मर्यादा महोत्सव के अवसर पर चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री को **'युगप्रधान'** की उपाधि से विभूषित किया।

वक्ता और साहित्य-स्रष्टा

आचार्यश्री की वक्तृत्व-कला अपूर्व थी। गम्भीरतम विषय को सरल बनाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करना आपकी विशेषता थी। परिषद् के अनुरूप ही आपकी भाषा-शैली होती थी। आप कभी राजस्थानी में तो कभी हिन्दी में प्रवचन करते थे।

आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। राजस्थानी भाषा में लिखे हुए आपके महत्वपूर्ण ग्रंथ—कालूयशोविलास, माणकमहिमा, डालम-चरित्र, मगन-चरित्र, चंदन की चुटकी भली, मां वदना आदि राजस्थानी साहित्य-भंडार के रत्न हैं। आपके प्रवचनों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में भी आपके लिखे अनेक स्वतंत्र ग्रंथ हैं।

आपने जैन-आगमों के सम्पादन का एक अनूठा कार्य हाथ में

लिया। इस कार्य में अनेक साधु-साध्वियां संलग्न हैं। सभी आगम सुसम्पादित होकर प्रकाशित हुए हैं। जैन शासन के प्रति आपकी यह सेवा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी।

युवाचार्य का मनोनयन

आचार्य के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य भावी आचार्य की नियुक्ति करना होता है। यह कार्य आपने सम्वत् २०३५ मर्यादा महोत्सव (माघ शुक्ला ७) के शुभ अवसर पर राजलदेसर में मुनिश्री नथमलजी को युवाचार्य पद पर मनोनीत कर पूरा किया तथा उनका नाम भी परिवर्तित कर 'महाप्रज्ञ' रख दिया।

वि. सं. २०५० (१८ फरवरी १९९३) सुजानगढ़ मर्यादा महोत्सव के अवसर पर आचार्यश्री ने अपना पद विसर्जन कर युवाचार्य महाप्रज्ञ को तेरापंथ के दसवें आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। इतिहास की यह विरल घटना है कि किसी आचार्य ने अपने जीवन काल में आचार्य पद का त्याग कर अपनी उपस्थिति में ही किसी व्यक्ति को आचार्य पद प्रदान किया हो । इतिहास के इन दुर्लभ क्षणों में ही आचार्य महाप्रज्ञ ने संघ की ओर से आचार्य श्री तुलसी को **'गणाधिपति पूज्य गुरुदेव'** पद प्रदान किया। इस अवसर पर अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने अपने जीवन को अंतरंग साधना और मानवता की सेवा के लिए समर्पित कर दिया ।

अन्तिम प्रवास और स्वर्गारोहण

गणाधिपति गुरुदेव तुलसी ने चतुर्मास के लिए अपना अन्तिम प्रवास गंगाशहर (बीकानेर) में किया। स्वास्थ्य लाभ के लिए गुरुदेव लगभग २५ दिन 'बोथरा भवन' में रहे । वि. सं. २०५४ आषाढ़ बदी तीज (२३ जून १९९७) को लगभग साढ़े दस बजे पुनः 'तेरापंथ

भवन' लौट आए। भावी की विधि को कौन जानता था ? सहसा हृदय गति रुक जाने के कारण वे ८३ वर्ष की अवस्था में सदा के लिए इस संसार से महाप्रयाण कर गए । उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की विशद् रेखाएं आज भी जन मानस को प्रभावित कर रही हैं।

प्रश्न :

१. आचार्य श्री तुलसी का जन्म कहां और कब हुआ ?

२. मोहनलालजी ने आचार्यश्री तुलसी के वैराग्य की परीक्षा कैसे ली ?

३. आचार्यश्री तुलसी को युवाचार्य का पद कहां दिया गया ?

४. आचार्य श्री तुलसी ने किन-किन प्रांतों की यात्रा की ?

५. दसवें आचार्य की घोषणा कब और कहां हुई ?

६. अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन कब और कहां हुआ ?

१५

युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ

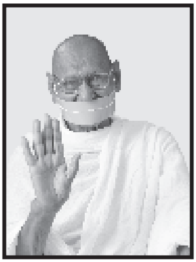

राजस्थान के झुंझनूं जिले का एक छोटा-सा ग्राम टमकोर। चारों ओर ऊंचे-ऊंचे रेतीले धोरे। न सड़कें, न बिजली और न आवागमन के सुलभ साधन। शान्त, सुरम्य और प्रदूषण मुक्त वातावरण। वहां का चोरड़िया परिवार एक जाना-माना, समृद्ध और सम्पन्न परिवार था। उसी परिवार में मातुश्री बालूजी की पावन कुक्षि से वि.सं. १९७७, आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी (१४ जून १९२०) के पुण्य दिन, गोधूलि के समय एक होनहार बालक का जन्म हुआ। नाम रखा गया 'नथमल'। पिताश्री तोलारामजी का प्रांगण शिशु की बालसुलभ क्रीड़ाओं और किलकारियों से गूंज उठा। जब बालक ने छह-सात वर्ष की अवस्था में प्रवेश किया तो पढ़ने के लिए गुरुजी के पास भेजा गया। उस समय अच्छी शिक्षा प्राप्ति के साधन भी सुलभ नहीं थे। उन दिनों मुनि छबीलजी स्वामी का चतुर्मास टमकोर में था। मुनिवर्य की आध्यात्मिक प्रेरणा पाकर बालक नथमल के अन्तःकरण में सुषुप्त वैराग्य-संस्कारों का जागरण हो गया।

दस वर्ष की लघु अवस्था में बालक नथमल अपनी मातुश्री बालूजी के साथ सरदारशहर में वि.सं. १९८७, माघ शुक्ला १० (१० फरवरी १९३१) को तेरापंथ के अष्टमाचार्य पूज्य कालूगणी के कर कमलों से दीक्षित हो गए। पूज्यपाद कालूगणी ने आपके सर्वांगीण विकास का दायित्व मुनि तुलसी (आचार्य तुलसी) को सौंपा। मुनि तुलसी ने आपको संस्कार और विकास दोनों दिशाओं में आगे

बढ़ाया। धीरे-धीरे आप मेधावी मुनियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हो गए।

आचार्य तुलसी ने वि.सं. २००८, माघ शुक्ला १३ (६ फरवरी १९४४) गंगाशहर में आपको अग्रगण्य बनाकर सरदारशहर पृथक् चतुर्मास के लिए भेजा। वि.सं. २००४ श्रावण शुक्ला १३ (३० जुलाई १९४७) रतनगढ़ में आप साझपति और वि.सं. २०२२ (माघ शुक्ला षष्ठी (२८ जनवरी १९६६) हिसार में निकाय सचिव बने। उससे आपकी प्रतिभा को और अधिक निखरने का अवसर मिला। वि.सं. २०३५, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी (१२ नवम्बर १९७८) गंगाशहर में आचार्य तुलसी ने आपको 'महाप्रज्ञ' के अलंकरण से अलंकृत करते हुए कहा था—'मुनि नथमलजी अपूर्व सेवाओं के लिए यह पूरा धर्मसंघ कृतज्ञता ज्ञापित करता है। यह अलंकरण उसकी स्मृतिमात्र हैं। वि.सं. २०३५, माघ शुक्ला सप्तमी (४ फरवरी, १९७९), राजलदेसर में आचार्य तुलसी ने मुनि नथमलजी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। आप मुनि नथमल से युवाचार्य महाप्रज्ञ बन गए, संघ के सिरमौर बन गए। आचार्य तुलसी ने एक क्रांतिकारी कदम उठाते हुए अपने जीवन काल में वि.सं. २०५० माघ शुक्ला सप्तमी (१८ फरवरी, १९९४), सुजानगढ़ में युवाचार्य महाप्रज्ञ को आचार्यपद पर प्रतिष्ठित करते हुए कहा था—'हमारे धर्मसंघ में किसी भी पूर्वाचार्य ने अपने युवाचार्य को आचार्य पद पर नहीं देखा। मैं उसे देखना चाहता हूं। आचार्य तुलसी ने स्वयं का आचार्य पद विसर्जित करते हुए आपको संघ के सर्वोच्च पद पर आसीन कर दिया और स्वयं गणाधिपति गुरुदेव तुलसी के संबोधन से विख्यात हुए। यह इतिहास की विरल घटना थी कि आप गुरु तुलसी की विद्यमानता में तेरापंथ धर्मसंघ के दशमाधिशास्ता बन गए। वि.सं. २०५१, माघ शुक्ला षष्ठी (५ फरवरी, १९९५) का पावन दिन दिल्ली महरोली स्थित अध्यात्म साधना केन्द्र के सम्मुख विशाल मैदान। लगभग पचास

हजार लोगों की उपस्थिति में आपका भव्य आचार्य पदाभिषेक हुआ। इस समारोह में देश के अनेक गणमान्य राजनेता, साहित्यकार, पत्रकार और बुद्धिजीवी साक्षी बने।

आप विविधरूप व्यक्तित्व के धनी थे। एक रूप आपका योगी और ध्यानी का था तो दूसरा रूप मुनि और मनस्वी का था। एक रूप गुरु और अनुशास्ता का था तो अन्य रूप मौलिक साहित्य-स्रष्टा और अन्वेषक का था। आपका संपूर्ण जीवन श्रद्धा और समर्पण का दस्तावेज रहा।

आपने अपने कर्तृत्व—व्यक्तित्व से समाज, राष्ट्र और संघ को बहुत कुछ दिया। उसके आलोक में आपके अनेक अवदान इस प्रकार हैं।

● आप हिन्दी, प्राकृत और संस्कृत भाषा के विशेषज्ञ थे। संस्कृत में आशुकवित्व करना आपकी दुर्लभ सिद्धि थी। अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत के बड़े-बड़े कार्यक्रम हुए। वहां आपने आशुकवित्व करके संस्कृत के पंडितों और बुद्धिजीवियों को चमत्कृत किया।

● आप मौलिक चिंतन, लेखक और कुशल प्रवक्ता थे। दर्शन, योग, न्याय, अध्यात्म और जैन तत्त्वों आदि पर आपके ३०० से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित हुए। आपने अपनी लेखनी से युग समस्या के समाधायक बिन्दुओं को आपने साहित्य में प्रस्तुत कर जनता का पथ-दर्शन किया है।

● उज्जैन में आचार्यश्री तुलसी ने आगम सम्पादन का एक महान् कार्य प्रारंभ किया और उसे मूर्त रूप दिया आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने। आगमों का संपादन और विवेचन कर आपने जैन शासन और श्रुत की अविस्मरणीय सेवा की है। आचारांग पर संस्कृत में भाष्य लिखकर आपने इतिहास की पुनरावृत्ति की और भाष्यकारों की पंक्ति में

अवस्थित हो गए।

● आपने अपने जीवन में ध्यान योग के अनेक प्रयोग किए। आचार्य तुलसी की प्रेरणा से अध्यात्म के रहस्यों और उनके गहन अन्वेषण में आपका सतत प्रयास चलता रहा। आगम मंथन और दीर्घकालीन शोध और प्रयोग के पश्चात् आपने 'प्रेक्षाध्यान' पद्धति का आविष्कार कर जैन साधना पद्धति को पुनरुज्जीवित किया। इस उपलब्धि का मूल्यांकन करते हुए आचार्य तुलसी ने अमृत-महोत्सव के अवसर पर लाडनूं में आपको 'जैन योग के पुनरुद्धारक' के संबोधन से संबोधित किए।

● वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बौद्धिक विकास के साथ-साथ मानसिक एवं भावात्मक विकास के सूत्रों का होना बहुत अपेक्षित है। उस अपेक्षित पूर्ति के लिए आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा 'जीवन विज्ञान' का क्रांतिकारी अभिनव उपक्रम शिक्षा की समस्या में समाधान बना। आज शिक्षा के क्षेत्र में 'जीवन विज्ञान' बहुप्रशंसित और बहुचर्चित आयाम है।

● अहिंसा, विश्वशान्ति एवं नैतिकता के क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं के लिए आपने 'अहिंसा समवाय मंच' की अवधारणा प्रस्तुत की। इससे बिखरी शक्तियों को स्वस्थ समाज रचना के लिए एक संगठित तथा एकजूट काम करने का अवसर मिला।

वि.सं. २०५४, आषाढ़ कृष्णा तीज (२३ जून, १९९७) को गणाधिपति गुरुदेव तुलसी का गंगाशहर (बीकानेर) में महाप्रयाण हो गया। उसके बाद आपने वि.सं. २०५४, भाद्रव शुक्ला १२ (१४ सितम्बर १९९७), गंगाशहर में विशाल जनमेदिनी के समक्ष महाश्रमण मुनि मुदितकुमार को युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। मुनि मुदित कुमार युवाचार्य महाश्रमण बन गए।

वि.सं. २०५५, माघ शुक्ला षष्ठी (२३ जनवरी, १९९९)

टोहाना में धर्मसंघ ने आपके युगप्रधान के पद से विभूषित किया और उसका पदाभिषेक वि.सं. २०५६, भाद्रव शुक्ला नवमी (१९ सितम्बर १९९९) दिल्ली, महरोली में संपन्न हुआ।

इसके पश्चात् आपने प्रेम, सौहार्द आपसी भाईचारा और मैत्री की भावना को जाग्रत करने के लिए सप्तवर्षीय, अहिंसा यात्रा प्रारम्भ की। वह यात्रा साम्प्रदायिक दंगे, हिंसा, आगजनी और विरोध की चिनगारियों को शान्त करने के लिए कारगार सिद्ध हुई। उसी के अंतर्गत आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने पारस्परिक सौहार्द के लिए त्रिसूत्री फार्मूला भी तैयार किया। उसी का परिणाम था कि अहमदाबाद में जगन्नाथ रथ यात्रा शांति से निकली। सभी वर्गों को आचार्यवर के निकट आने का अवसर मिला और सभी सम्प्रदायों में सद्भावना का वातावरण बना। भारत के राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने सूरत में अन्यान्य धर्मगुरुओं की उपस्थिज्ञति में जन्म दिवस आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में मनाया। सूरत आध्यात्मिक घोषणा पत्र जारी हुआ। उसके अंतर्गत सभी धर्मगुरुओं की साक्षी से राष्ट्रीय चारित्रोत्थान के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए थे।

राष्ट्रपति अब्दुल कलाम और आचार्य महाप्रज्ञ—दोनों ने संयुक्त रूप में एक पुस्तक लिखी। वह पुस्तक 'सुखी परिवार और समृद्ध राष्ट्र' के नाम से बहुप्रशंसित हुई।

मानवजाति के उत्थान हेतु आपने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उसी के फलस्वरूप आप इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार (सन् २००३) धर्म चक्रवर्ती, लोकमहर्षि एवं राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भाव पुरस्कार (सन् २००५) आदि पुरस्कारों तथा सम्मानों से सम्मानित हुए।

वि.सं. २०६७ प्र. वैशाख शुक्ला पूर्णिमा (२८ अप्रैल, २०१०) को आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने सरदारशहर चातुर्मास के लिए प्रवेश

किया। चारों ओर उल्लास, जोश और उमंग का वातावरण था पर किसे पता था कि चतुर्मास नहीं हो पाएगा। द्वितीया, वैशाख कृष्णा ग्यारस (९ मई) का दिन उगा। पूज्यवर ने प्रतिदिन की भांति करणीय कार्यों को सम्पन्न किया। प्रातःकालीन अमृतमय प्रवचन हुआ, लोगों को सेवा भी कराई। आहार करने के पश्चात् विश्राम भी किया। लगभग सवा दो बजे विराजना हुआ। अन्दर जाने के लिए संतों का सहारा लिया। उनके अंतिम वाक्य थे–आज पैर चल नहीं पा रहे हैं, मस्तिष्क में शून्यता-सी अनुभव हो रही है और शरीर में दाह लग रहा है। डॉक्टर को याद कर लिया जाए। संतों ने जीभ पर चन्दन के तैल की एक बूंद भी दवाई के रूप में दी। कुर्सी पर बैठकर उदक भी पीया। विश्राम के लिए ज्योंही पट्ट पर विराजे, अचानक कौमा में चले गए। देखते-देखते २.५२ को उन्होंने अंतिम श्वास ली। एक महासूर्य जो तेरापंथ के गगनांगण में उदित होकर अपनी प्रभास्वर से लोगों को आलोकित कर रहा था वही सूर्य सबकी आंखों से ओझल हो गया। उस समय उनकी अवस्था ९० वर्ष की थी।

प्रश्न :

१. आचार्यश्री महाप्रज्ञ का जन्म कहां और कब हुआ ?

२. आचार्यश्री महाप्रज्ञ का आचार्य पदाभिषेक कहां और कब हुआ ?

३. आचार्यश्री महाप्रज्ञ की दीक्षा किनके हाथों हुई ?

४. आचार्यश्री महाप्रज्ञ की दीक्षा कब और कहां हुई ?

५. आचार्यश्री महाप्रज्ञ का महाप्रयाण कहां हुआ ?

६. आपके जीवन की विशेषताओं का उल्लेख करो ।

१६

आचार्यश्री महाश्रमण

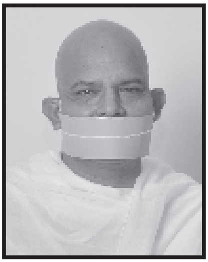

जन्म

सरदारशहर की पुण्यस्थली। वि. सं. २०१९, वैशाख शुक्ला नवमी (१३ मई, १९६२) का मंगल प्रभात। एक अनाम शिशु ने दूगड़ परिवार में मातुश्री नेमादेवी की कुक्षि से जन्म लिया। व्यवहार जगत् में 'मोहन' नाम से पहचान बनाई। पिताश्री झूमरमल जी का हृदयांगण खुशियों से भर गया। बालक मोहन बचपन से ही मेधावी, श्रमशील, कार्यनिष्ठ विद्यार्थी थे। उनकी विनम्रता, भद्रता, ऋजुता, मृदुता और पापभीरुता हृदय को छूने वाली थी। उस समय कौन जानता था कि यह बालक आगे चलकर तेरापंथ का ग्यारहवां अधिशास्ता बनेगा।

दीक्षा

भावी के गर्भ में कितने रहस्य छिपे होते हैं। समय आने पर ही वे उद्घाटित होते हैं। जब बालक मोहन मात्र सात वर्ष की लघु अवस्था में थे तभी वे पितृ-वात्सल्य से वंचित हो गए। परिवार में एक अपूरणीय क्षति हो गई किन्तु मातुश्री ने अपनी वत्सलता और स्नेह देकर कभी अपने लाडले को उस रिक्तता की अनुभूति नहीं होने दी। जीवन की क्षणभंगुरता ने बालक की दिशा और दशा-दोनों को बदल दिया। उनके मन में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हो गया। ज्यों-ज्यों उसे सिंचन मिला वह पुष्पित, पल्लवित होता चला गया। समय-समय पर मां के द्वारा मिलने वाली प्रेरणाओं, सद्शिक्षाओं और सद्संस्कारों ने भी ब्रेनवाशिंग का काम किया। अध्यात्म के प्रति रुचि बढ़ती गई।

धीरे-धीरे उन्होंने उन अर्हताओं को अर्जित कर लिया, जो एक दीक्षित होने वाले साधक में होनी चाहिए। उन्होंने अपने मनोबल और शरीरबल को तोलकर दीक्षा लेने की भावना आचार्यश्री तुलसी के सामने रखी। उस समय आचार्यश्री दिल्ली में प्रवासित थे। आचार्यश्री ने उनका यथोचित परीक्षण कर सरदारशहर की पुण्य भूमि पर ही मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) को दीक्षा देने की अनुमति प्रदान की।

वि. सं. २०३१, वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (५ मई, १९७४) रविवार के दिन बारह वर्ष ही लघु अवस्था में वे दीक्षित हो गए, मोहन से मुनि मुदित बन गए। बाह्य परिवेश बदलने के साथ-साथ उनका आन्तरिक परिवेश भी बदल गया। सारी प्रवृत्तियां संयममय हो गईं। व्यवहार में बाहर जीना और निश्चय में भीतर में रहना उनका जीवनसूत्र बन गया। वे अपना अधिकाधिक समय स्वाध्याय, ध्यान, पाठ का कंठीकरण और उसके पुनरावर्तन में नियोजित करते थे। समय-समय पर उन्हें आचार्य तुलसी और युवाचार्य महाप्रज्ञ का सान्निध्य मिलता रहा। वि. सं. २०४१, ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी को आचार्यश्री ने उन्हें अपनी व्यक्तिगत सेवा में नियुक्त कर लिया। इससे उन्हें ज्ञानार्जन, गुरुसेवा और गुरुकुलवास में रहने का सहज ही अवसर मिल गया। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और अग्रेजी भाषाओं में उनका अध्ययन चलता रहा।

महाश्रमण प्रारम्भ से ही एक प्रशान्तमूर्ति के रूप में प्रसिद्ध थे। न अधिक बोलना और न अधिक देखना। आंखों की पलकें भी प्रायः निमीलित ही रहती थीं। उनकी निस्पृहता, निरभिमानता सबको लुभाने वाली थी। ज्यों-ज्यों उनकी अर्हताएं बढ़ रही थीं दायित्व की परिधि भी विस्तार पा रही थी। वि.सं. २०४१, जोधपुर प्रवास में वे एक उपदेष्टा के रूप में उभर कर सामने आए। आचार्य तुलसी ने उन्हें व्याख्यान से पूर्व प्रतिदिन उपदेश देने के कार्य में नियोजित किया।

महाप्रज्ञ के अन्तरंग सहयोगी

वि.सं. २०४२, माघ शुक्ला सप्तमी (१६ फरवरी,१९८६) उदयपुर मर्यादोत्सव के शुभ अवसर पर मुनि मुदित की क्षमताओं का मूल्यांकन करते हुए आचार्य तुलसी ने उनको युवाचार्य महाप्रज्ञ का अंतरंग सहयोगी घोषित कर दिया। उस दायित्व का उन्होंने गहन निष्ठा और कुशलता से निर्वहन किया और संभवतः तभी से वे सुयोग्य उत्तराधिकारी के रूप में आचार्य-युवाचार्य के मानस पटल में अंकित हो गये।

साझपति (ग्रुपलीडर)

वि.सं. २०४३, वैशाख शुक्ला चतुर्थी (१४ मई, १९८६) ब्यावर में आचार्य तुलसी ने अक्षय तृतीया के अवसर पर मुनि मुदित को साझपति (एक मुनिसमूह का मुखिया) नियुक्त किया। उसी दिन से उनकी पहचान ग्रुपलीडर के रूप में की जाने लगी।

महाश्रमणपद पर प्रतिष्ठित

आचार्य तुलसी ने संघ में अनेक नवीन कार्य किए। 'महाश्रमण' पद का सृजन भी उसी नवीनता का परिचायक था। योगक्षेम वर्ष का पावन प्रसंग। लाडनूं की पुण्यस्थली। वि.सं. २०४६, भाद्रव शुक्ला नवमी (९ सितम्बर, १९८९) का मंगलमय प्रभात। आचार्य तुलसी के पट्टोत्सव का पावन प्रसंग। उस दिन आचार्यवर ने मुनि मुदित को 'महाश्रमण' के गरिमामय पद पर नियुक्त कर एक नया इतिहास बना दिया। महाश्रमण को सम्मानस्वरूप पछेवड़ी ओढाने का श्रेय शासन गौरव मुनिश्री बुद्धमलजी को मिला। वरीयता के क्रम में यह पद आचार्य और युवाचार्य के बाद होने वाला तीसरा पद था। यह पद अपने आप में गौरवशाली भी था और रचनात्मक कार्य करने की दिशा में एक नया कदम भी था।

शुभ भविष्य का शुभ संकेत

वि. सं. २०५१, माघ शुक्ला सप्तमी (६ फरवरी, १९९५)

का पावन दिन। महानगरी दिल्ली में समायोजित आचार्य महाप्रज्ञ का पदाभिषेक समारोह। गणाधिपति गुरुदेव तुलसी ने महाश्रमण मुनि मुदित कुमार को पुनः महाश्रमण पद पर प्रतिष्ठित करते हुए नियुक्ति पत्र में लिखा—'महाश्रमण मुनि मुदित कुमार आचार्य महाप्रज्ञ के गण-संचालन के कार्य में सतत सहयोगी रहें तथा स्वयं गण-संचालन की योग्यता विकसित करें। इसके लिए अवशेष जो करणीय है वह उचित समय पर आचार्य महाप्रज्ञ करेंगे।' विज्ञजनों की दृष्टि में यह ऐतिहासिक दस्तावेज शुभ भविष्य का स्पष्ट संकेत था।

युवाचार्यपद

पूज्यवर्य गणाधिपति श्री तुलसी के महाप्रयाण के कुछ दिनों पश्चात् आचार्य महाप्रज्ञ ने अप्रत्याशित रूप से युवाचार्य मनोनयन की घोषणा कर दी। वि.सं. २०५४, भाद्रव शुक्ला द्वादशी (१४ सितम्बर, १९९७) का मंगलमय दिवस। चौपड़ा हाई स्कूल का विशाल मैदान। वह दृश्य जन-जन के लिए कितना आह्लादकारी और नयनाभिराम था जब आचार्य महाप्रज्ञ ने विशाल जनमेदिनी के मध्य-'आओ मुदित'—कहकर पुकारा। एक शब्द के साथ ही लाखों हाथ हवा में लहरा उठे, जय निनाद से धरती-अंबर गूंज उठे और खुशियों से मंगल शंख बज उठे। एक आवाज के साथ ही महाश्रमण मुनि मुदित युवाचार्य महाश्रमण बन गए, लाखों लोगों के आराध्य और पूजनीय बन गए। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने पहले स्वयं पछेवड़ी (उत्तरीय) धारण कर बाद में महाश्रमण को ओढ़ाकर उन्हें युवाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया और अपने समीप पट्ट पर बिठा कर अलंकृत किया।

आचार्य पदाभिषेक

वि. सं. २०६७, द्वि. वैशाख कष्णा एकादशी (९ मई, २०१०) के दिन आचार्य महाप्रज्ञ का सरदारशहर, गोठी भवन में आकस्मिक महाप्रयाण हो गया। वि.सं. २०६७, द्वि. वैशाख शुक्ला दशमी

(२३ मई, २०१०) को गांधी विद्या मन्दिर के विषाल प्रांगण में आचार्य महाश्रमण का ग्यारहवें अनुशास्ता के रूप में पदाभिशेक का विशाल आयोजन था। उस समय देश के कोने-कोने से समागत ३५ हजार श्रद्धालुजन तथा देश के शीर्षस्थ राजनीतिज्ञ व चिंतक श्रीलालकृष्ण आडवाणी, राजनाथ सिंह, राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री राजकुमार षर्मा सांसद सन्तोशजी बागडोरिया, राजस्थान भाजपा के पूर्व अध्यक्ष श्री महेश शर्मा आदि उपस्थित थे। महामंत्रोच्चार, 'जय जय महाश्रमण' के सामूहिक संगान के पश्चात साध्वी प्रमुखा ने कार्यक्रम का संयोजन करते हुए आचार्यवर को पट्टासीन होने की भावभरी विनती की। पट्टासीन होने के बाद मुनिजनों ने आर्शमंत्रों द्वारा आचार्यवर की वर्धापना की। दीक्षा पर्याय में ज्येष्ठ मुनि सुमेरमल 'सुदर्शन' ने जैसे ही आचार्य महाश्रमण को पछेवड़ी ओढाई, जयघोषों से सारा आकाश गूंज उठा। मुनि सुखलाल ने सम्पूर्ण धर्मसंघ की ओर से अभिनन्दन पत्र का वाचन किया और उसे श्री चरणों में उपहृत किया गया। पदाभिषेक के पश्चात साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी ने नवीन रजोहरण एवं प्रमार्जनी, मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी ने आहार के उपयोग आने वाला कलात्मक पात्र तासक, शासन गौरव साध्वी राजीमती ने गिलास, प्याला आदि आचार्यवर को भेंट किए। अन्त में आचार्य महाश्रमण ने संघ के नाम अपना प्रथम संबोधन दिया। तेरापंथ की इस विलक्षण और अद्वितीय परम्परा को हजारों-हजारों आंखों ने निहारा और अभिनन्दन किया। अन्त में संघगान के साथ उल्लासमय, आनन्दमय और तृप्तिमय वातावरण में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रश्न

१. आचार्यश्री महाश्रमण का संक्षिप्त में परिचय प्रस्तुत करें।

२. शुभ भविष्य का संकेत को स्पष्ट करें।

३. आचार्यश्री महाश्रमण की दीक्षा कब हुई थी ?

४. आचार्यश्री महाश्रमण के माता-पिता का क्या नाम था ?

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

१७

जैन-धर्म

प्र० १ – जैन धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर — जैन धर्म की उत्पत्ति जिन शब्द से होती है । जिन उस आत्मा का नाम है जिसने राग-द्वेष को जीतकर वीतराग अवस्था को प्राप्त कर लिया है । उस वीतराग पुरुषों द्वारा कथित धर्म को जैन धर्म कहते हैं ।

प्र० २ – जैन धर्म का प्रारम्भ कब से हुआ ?

उत्तर — प्रवाह की दृष्टि से धर्म शाश्वत है, अनादि है, परन्तु इस युग में जैन धर्म के आदिकर्ता भगवान् ऋषभ देव हैं। उनके बाद २३ तीर्थंकर हो चुके हैं। अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं।

प्र० ३ – जैन धर्म में कौन-कौन सी विशेषताएं है ?

उत्तर — जैन धर्म में व्यक्ति पूजा को स्थान नहीं है वहां गुणों की पूजा होती है। इसीलिए जैन धर्म के सबसे मुख्य मंत्र नमस्कार महामंत्र में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है।

— जैन धर्म आत्मवादी है वह आत्मा को अजर अमर मानता है। कर्म से बद्ध आत्मा संसार में परिभ्रमण करती है कभी मनुष्य कभी देवता और कभी पशु-पक्षी रूप में जन्म धारण करती है। कर्म मुक्त आत्मा सिद्धगति को धारण करती है।

— जैन धर्म जातिवाद को नहीं मानता । जैन धर्म में सभी जाति के लोगों को धर्म करने का अधिकार है। भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गौतम आदि ११ गणधर जाति से **ब्राह्मण** थे। हरिकेशी मुनि जाति से **चांडाल** थे। श्रेणिक सम्राट् राजा प्रदेशी **क्षत्रिय** थे। आनन्द श्रावक आदि **वैश्य, किसान** व **कुंभकार** आदि थे।

प्र० ४ – जैन धर्म के मुख्य सिद्धांत क्या हैं ?

उत्तर — जैन धर्म का मुख्य सिद्धांत अहिंसा और समता है—किसी व्यक्ति को न मारना, न सताना, न पीड़ा पहुंचाना और सबके साथ समता का व्यवहार करना अहिंसा है।

— जैन धर्म ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं मानता ।

— जैन धर्म पूर्व जन्म व पुनर्जन्म को मानता है।

— जैन धर्म का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी है। वह प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखता है।

प्रश्न :

१. जिन किसे कहते हैं ?

२. क्या जैन धर्म जातिवाद को मानता है ?

३. क्या जैन धर्म ईश्वर को संसार का कर्त्ता-हर्त्ता मानता है ?

४. क्या जैन धर्म पुनर्जन्म को मानता है ?

५. भगवान् के ११ गणधर किस जाति के थे ?

६. जैन धर्म के आदिकर्ता कौन है ?

७. हरिकेशी मुनि की क्या जाति थी ?

१८

तेरापंथ

आचार्य भिक्षु स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए । आठ वर्ष तक वहां रहे । आचार और विचार में मतभेद होने के कारण वे वहां से अलग हो गए । वे कोई नया संगठन करना नहीं चाहते थे। आचार का विशुद्ध पालन करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था ।

जब वे पृथक् हुए तब उनके साथ पांच साधु थे। जोधपुर की घटना है कि वहां एक दुकान में तेरह श्रावक सामायिक कर रहे थे। उसी समय स्थानीय दीवान फतहमलजी सिंघी घोड़े पर उधर से आ निकले। उन्होंने श्रावकों से पूछा—आप यहां सामायिक क्यों कर रहे हैं ? श्रावकों में गेरूलालजी व्यास वहीं थे। इसके उत्तर में उन्होंने बतलाया कि हमारे गुरु ने स्थानक का परित्याग कर दिया है, इसलिए स्थानक को छोड़कर हम यहां सामायिक कर रहे हैं। दीवानजी के आग्रह पर उन्होंने सारा विवरण कह सुनाया । उस समय वहां एक सेवक जाति का कवि पास में खड़ा था । उसने तेरह की संख्या को ध्यान में रखकर तत्काल एक दोहा बना डाला ।

साध-साध रो गिलो[१] करै, ते तो आप आप रो मंत।
सुणज्यो रे शहर रा लोकां, ए तेरापंथी तंत।।

उस समय आचार्य भिक्षु बीलाड़ा या उसके समीपवर्ती किसी क्षेत्र में थे। उन्होंने नामकरण के समय की सारी घटना को सुना तो उनकी प्रतिभा ने उस शब्द को स्वीकार कर लिया। तब उसी समय आसन छोड़ व हाथ जोड़कर अपने प्रभु को सम्बोधन करते हुए कहा—'हे प्रभो ! यह तेरा पंथ है'—यह तुम्हारा मार्ग है। हम

---

१. मार्ग

केवल इस मार्ग पर चलने वाले हैं।

आपने तेरापंथ का दूसरा अर्थ करते हुए कहा—जो तेरह नियमों का पालन करता है वह तेरापंथी है।

तेरह नियम

तेरापंथ के प्रमुख तेरह नियम हैं—पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति ।

पांच महाव्रत

१.	अहिंसा	—	हिंसा नहीं करना ।
२.	सत्य	—	झूठ नहीं बोलना ।
३.	अस्तेय	—	चोरी नहीं करना ।
४.	ब्रह्मचर्य	—	स्त्री-संग नहीं करना ।
५.	अपरिग्रह	—	धन-धान्य नहीं रखना और ममत्व का त्याग करना।

पांच समिति

१.	ईर्या समिति	—	देखकर चलना ।
२.	भाषा समिति	—	विचारपूर्वक निरवद्य बोलना ।
३.	एषणा समिति	—	शुद्ध आहार-पानी की गवेषणा करना ।
४.	आदान निक्षेप समिति	—	वस्त्र आदि उपकरणों को सावधानी से लेना और रखना।
५.	परिष्ठापन समिति	—	मल-मूत्र का उत्सर्ग करने में सावधानी रखना।

तीन गुप्ति

१. मनो गुप्ति — मन को वश में करना ।

२. वाक् गुप्ति — वचन को वश में करना ।

३. काय गुप्ति — शरीर का संयम करना ।

इस प्रकार आचार्य भिक्षु के पंथ का नाम तेरापंथ प्रचलित हो गया।

आचार्य भिक्षु तेरापंथ के संस्थापक बन गए ।

प्रश्न :

१. तेरापंथ के संस्थापक कौन थे ?

२. तेरापंथ नाम कहां और किस कारण हुआ ?

३. तेरह नियमों के नाम बताओ ।

४. एषणा समिति का अर्थ बताओ ।

५. वाणी का संयम करना कौन-सी गुप्ति है ?

६. खाली स्थान को पूरा करें -

क. आचार्य भिक्षु .... सम्प्रदाय में दीक्षित हुए।

ख. आचार्य भिक्षु .... अलग हुए तब ....साधु थे।

नोट–विद्यार्थियों को इस पाठ में आया हुआ दोहा और १३ नियमों के नाम कंठस्थ रखने चाहिए ।

१९

प्रभात-कार्य

प्रकृति के नियमानुसार सब लोग रात्रि को सोते हैं और सुबह उठते हैं। उठने के बाद शरीर-संबंधी शौचादि प्रभात-कार्य करते हैं। शरीर को साफ-सुथरा एवं स्वस्थ रखने की कोशिश करते हैं। मन को पवित्र रखने के लिए धर्माचरण करने का यह सुन्दर समय है। अध्ययन और स्वाध्याय के लिए भी प्रभात का समय अत्यन्त उपयोगी और प्रशस्त माना गया है।

प्रातःकाल परमेष्ठी महामंत्र की एक माला का जाप अवश्य करना चाहिए। हाथ की अंगुलियों के बारह पोर होते हैं, उन पर नौ बार मंत्र-जाप करने से एक माला पूरी हो जाती है। इसलिए इसको नवकरवाली भी कहा जाता है। कुछ व्यक्ति अंगुलियों के बिस्वों पर मंत्र-जाप करते हैं और कुछ व्यक्ति माला के मनकों पर । इन दोनों तरह से ही १०८ बार जाप किया जाता है। मंत्र जपते समय हृदय सरल और शरीर स्वच्छ होना चाहिए।

यदि पूरी माला न फेर सके तो प्रातः कम से कम पांच बार नवकार मंत्र का जाप किए बिना मुंह में पानी भी नहीं लेना चाहिए। जो बालक नवकार मंत्र का नित्य जाप करता है वह अच्छा बालक होता है।

अगर गांव में साधु-साध्वियां हों तो उनके दर्शन करने चाहिए, क्योंकि संयमी आत्माओं के दर्शन करने से दिल में संयम की भावना उत्पन्न होती है। उनके शुद्ध आचरण देखने को मिलते हैं, इससे मानसिक विचार पवित्र बनते हैं।

प्रातः प्रतिदिन एक सामायिक अवश्य करनी चाहिए। दैनिक उपासना के लिए यह बहुत उपयोगी है। ४८ मिनट के लिए सांसारिक झंझटों से दूर होकर ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय में मन लगाने से बड़ी शांति मिलती है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए संयम आवश्यक होता है सामायिक करने से समता का भाव और संयम का अभ्यास होता है।

प्र० सामायिक में किन उपकरणों की आवश्यकता होती है ?

उत्तर एक आसन, प्रमार्जनी, मुखवस्त्रिका या रूमाल, माला, एक चद्दर व धार्मिक पुस्तक ।

प्र० सामायिक कैसे की जाती है ?

उत्तर सर्वप्रथम पुरुष हो तो गंजी को छोड़ उपर के कपड़े उतारकर, चद्दर ओढ़, फिर आसन बिछाकर, सुखासन में बैठकर, हाथ जोड़ नमस्कार मंत्र का उच्चारण करे। उसके बाद तिक्खुत्तो के पाठ का उच्चारण करते हुए गुरु वन्दन करें फिर 'मत्थएण वंदामि एक सामायिक की आज्ञा है' ऐसा उच्चारण करते हुए 'करेमि भन्ते !' पाठ के उच्चारण द्वारा सामायिक व्रत-ग्रहण करें।

सामायिक का काल पूर्ण होने पर 'आलोचना' पाठ का उच्चारण करते हुए सामायिक को पूरा करें।

प्रश्न :

१. साधुओं के दर्शन से क्या लाभ होता है ?

२. हाथ के बिस्वों पर कितनी बार जप करने से नवकरवाली होती है ?

३. सामायिक से क्या लाभ होता है ?

२०

देव, गुरु, धर्म

प्रश्न - तुम्हारे देव कौन हैं ?

उत्तर - अरहन्त ।

प्रश्न - अरहन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - चार घनघाती कर्म - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय को क्षीण कर जिन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की है, वे अरहन्त कहलाते हैं ।

प्रश्न - देव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - देव राग-द्वेष-रहित-वीतराग अर्थात् समदर्शी होते हैं। वे यथावस्थित तत्त्वों का उपदेश करते हैं और सत्यधर्म का प्रवर्तन करते हैं।

प्रश्न - देव साकार हैं या निराकार ?

उत्तर - देव साकार होते हैं। क्योंकि वे मनुष्य शरीरधारी हैं। जब वे सब कर्मों का नाश कर मुक्त हो जाते हैं तब निराकार होते हैं।

प्रश्न - देव के कौन-कौन से नाम हैं ?

उत्तर - अरहन्त, जिन, परमात्मा, परमेश्वर, प्रभु, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, देवाधिदेव आदि।

प्रश्न - वर्तमान में हमारे देव कौन हैं ?

उत्तर - वर्तमान में हमारे देव चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं।

प्रश्न - भैंरू, भवानी, रामदेव आदि देव दुनियां में माने जाते हैं, तो क्या वे देव नहीं हैं ?

उत्तर - वे धर्म प्रवर्त्तक देव नहीं है, लौकिक देव हैं।

प्रश्न - गुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर - पांच महाव्रतों का पालन करने वाले साधु को गुरु कहते हैं।

प्रश्न - वर्तमान में हमारे गुरु कौन हैं ?

उत्तर - वर्तमान में हमारे गुरु हैं आचार्यश्री महाश्रमण ।

प्रश्न - धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - ''आत्मशुद्धिसाधनं धर्मः''—जिन उपायों से आत्मशुद्धि होती है, उनको धर्म कहते हैं।

प्रश्न - वे उपाय कौन-कौन-से हैं ?

उत्तर - संवर और निर्जरा ।

प्रश्न - इनका आचरण किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर - त्याग-तपस्या करना । किसी को नहीं सताना, क्रोध नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, भ्रष्टाचार नहीं करना, मैत्री और करुणा भाव रखना, पवित्र रहना, विनय आदि का आचरण करना ये सभी आत्म-शुद्धि के उपाय हैं।

प्रश्न :

१. देव का स्वरूप क्या है ?

२. गुरु के लक्षण बताइये ।

३. धर्म का स्वरूप क्या है ? उसके उपाय कौन-कौन-से हैं ?

४. अरहंत किसे कहते हैं ?

२१

छह काय के जीव

(कांता और रमा दोनों बहिनें अपने घर की छत पर बैठी बातें कर रही हैं)

कान्ता - तुम कहां रहती हो रमा ?

रमा - जमीन पर।

कान्ता - क्या तुम जानती हो कि इसके अन्दर क्या-क्या चीजें हैं ?

रमा - हां-हां, अच्छी तरह से । मिट्टी, पत्थर, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, कोयला आदि बहुत-सी चीजें हैं जिनको मजदूर खानों से निकाला करते हैं।

कान्ता - रमा ! तुमने इस विषय में भी तो काफी पढ़ा होगा कि ये सब क्या हैं ?

रमा - मैंने नहीं पढ़ा, बहिन !

कान्ता - देखो, जो कुछ खान से निकलता है वह सब सजीव (जीव सहित) होता है । ये सब जीवों के शरीर हैं। इन्हें 'पृथ्वीकायिक' जीव कहते हैं।

(इतना सुनकर रमा खाना खाने के लिए नीचे चली गई और कान्ता छत पर ही बैठी रही। थोड़े समय बाद रमा ने उसको बुलाते हुए कहा)

रमा - कान्ता ! क्या देखती हो ? रात होनेवाली है, भोजन कब करोगी ?

कान्ता -भोजन पड़ा रहने दो । रात हो जाएगी तो क्या, आज न खाया सही। देखो कैसी सुहानी छवि है, चारों ओर घन-घोर घटा उमड़ रही है, बिजली कौंध रही है, नन्हीं-नन्हीं बूंदें गिर रही है, इधर आकर देखो तो सही !

(रमा छत पर आ जाती है)

रमा - ओह ! यह तो बड़ा ही सुन्दर दृश्य है।

कान्ता - क्या तुम्हें यह पता है कि बरसात का पानी सजीव होता है ?

रमा - नहीं, मुझे तो यह ज्ञान नहीं है । क्या पानी भी सजीव होता है ?

कान्ता - हां, कूएं का पानी, धूंध का पानी, बरसात का पानी भी सजीव होता है। इसे 'अप्कायिक जीव' कहते हैं।

रमा - क्या गैस से जलने वाली अग्नि भी सजीव होती है ?

कान्ता - हां, वह भी सजीव है। सिर्फ वह ही क्यों, जितनी भी प्रकार की आग है वह सब सजीव होती है और उसको 'तेजस्कायिक जीव' कहते हैं। क्या तुमने कभी तेजस्काय का नाम नहीं सुना है ?

रमा - नाम तो सुना था, पर मैं नहीं जानती थी कि आग को तेजस्काय कहते हैं। अच्छा बहिन ! एक बात तो और बताओ कि जो यह ठंडी पवन चल रही है, क्या यह भी सजीव है ?

कान्ता - हां-हां, ये भी वायुकाय के जीव हैं।

रमा - कांता ! सामने इतनी हरियाली खड़ी है, क्या इसके बारे में मुझे कुछ बता सकोगी ?

कान्ता - क्यों नहीं ? तुम देखती हो न, ये लताएं और वृक्ष जन्मते हैं, बड़े होते हैं, खाते-पीते हैं, कभी-कभी रोगी हो जाते हैं, बूढ़े होते हैं और मर जाते हैं इनका सजीव होना तो विज्ञान-सम्मत है ।

रमा - ठीक है, अब मैं याद रखूंगी कि हरी सब्जी, अनाज आदि को 'वनस्पतिकाय' के जीव कहते हैं।

कान्ता - मैं एक बात और बता देती हूं कि पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु और वनस्पति ये पांचों ही स्थावर-काय के जीव कहलाते हैं। ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं जा सकते। इनके केवल स्पर्शन-इंद्रिय ही होती है।

रमा - चलने-फिरने वाले—कृमि, चींटी, भौंरे, मनुष्य, हाथी आदि सभी जीव हैं, परन्तु मैं यह नहीं जानती कि ये किस काय के जीव हैं।

कान्ता - ये सब त्रस-काय के जीव हैं।

रमा - त्रस-काय से मुझे क्या समझना चाहिए ?

कान्ता - जो जीव सुख की इच्छा से तथा दुःख से दूर होने के लिए इधर-उधर आ-जा सकते हैं, सिकुड़ते हैं, भयभीत होते हैं, शब्द करते हैं वे सब त्रस-काय हैं। दो, तीन, चार तथा पांच इन्द्रिय वाले सभी जीव 'त्रस-काय' कहलाते हैं।

प्रश्न :

१. छह काय के जीवों के अलग-अलग नाम बताओ ।
२. पृथ्वीकाय में कौन-सी वस्तुएं आती हैं।
३. पानी किस काय के जीवों का शरीर है ?
४. त्रसकाय में कौन-कौन से जीव आते हैं ?
५. त्रसकाय का अर्थ समझाओ ।

२२

सावद्य-निरवद्य

रमण सोलह वर्ष का बालक था। घूमता-घूमता साधुओं के स्थान पर जा पहुंचा। वहां उसका मित्र मोहन मुंह पर एक सफेद वस्त्र बांधे बैठा था । उसे देखते ही रमण बोला, 'मोहन ! आज यह क्या ? चलो बाजार चलें ।'

मोहन - मैं नहीं जा सकता, मैंने सामायिक-व्रत ले रखा है।

रमण - सामायिक फिर क्या होती है ?

मोहन - सावद्य योग का त्याग करने का नाम सामायिक है।

रमण - सावद्य योग किसे कहते हैं?

मोहन - सावद्य का अर्थ है—पाप सहित कार्य । योग का अर्थ है—प्रवृत्ति। जो काम पाप सहित होते हैं, वे सब सावद्य हैं। जैसे हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, व्यापार करना आदि-आदि । सामायिक में इन सबका त्याग करना होता है।

रमण - क्या तुम इस समय व्यापार भी नहीं कर सकते ?

मोहन - व्यापार तो दूर रहा, मैं तुमसे यहां आने-जाने के लिए भी नहीं कह सकता।

रमण - अच्छा, मैं बाजार से सब्जी लाता हूं । वह तो खाओगे न ?

मोहन - कैसी बातें कर रहे हो ? मैं सब्जी को छू भी नहीं सकता। अगर सब्जी का स्पर्श भी हो जाये या कच्चे

जल की एक बूंद भी शरीर पर पड़ जाये तो मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

रमण - मैं तो सब कुछ कर सकता हूं, तुम्हारे फिर क्या है ?

मोहन - भाई ! तुम खुले हो, मैं इस समय संयम की साधना कर रहा हूं।

रमण - ऐसे तुम अकेले ही हो या कोई दूसरा भी है ?

मोहन - मैं तो क्या चीज हूं, देखो, सामने जो ये साधु-संत बैठे हैं उन्होंने तो अपना सम्पूर्ण जीवन ही साधना में लगा रखा है।

रमण - क्या वे भी उपरोक्त काम नहीं कर सकते ?

मोहन - अरे ! वे तो कभी नहीं कर सकते । मैंने तो सिर्फ ४८ मिनट तक ही सावद्य योग का त्याग किया है, पर उन्होंने तो जीवन-भर के लिए सब सावद्य योगों को त्याग कर रखा है।

रमण - तो फिर यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो ?

मोहन - निरवद्य कार्य कर रहा हूं।

रमण - निरवद्य क्या होता है ?

मोहन - निरवद्य का अर्थ है—पाप रहित कार्य । जैसे—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का पालन करना । आत्म-चिन्तन, स्वाध्याय आदि करना ।

रमण - ये साधु हैं, ये भी यही काम करते होंगे ?

मोहन - इनका तो कहना ही क्या है ? मैं तो एक अंश रूप में थोड़े-समय के लिये यह कर रहा हूं, इनका तो जीवन-भर यही काम है।

रमण - क्या सामायिक से तुम्हें कोई लाभ भी हुआ ?

मोहन - हां लाभ की क्या बात कहूं, सामायिक की साधना करते-करते मेरे आचरण भी सुधर गये हैं। मुझे सच्चे सुख का अनुभव होने लगता है। मैं मानता हूं कि मैं मनुष्य बन गया हूं। मैंने इससे समता का अभ्यास सीखा है।

रमण - अच्छा मित्र ! आज से मैं भी सामायिक का अभ्यास करूंगा ।

प्रश्न :

१. सामायिक और साधुपन में क्या अन्तर है ?

२. सामायिक में कौन-कौन से काम नहीं करने चाहिए ?

३. सावद्य-निरवद्य का अर्थ समझाओ ।

४. सामायिक कितने मिनट की होती है ?

५. सामायिक से क्या लाभ होता है ?

२३

इन्द्रियां

दिनेश - सुरेश ! तुम कौन हो ?

सुरेश - मैं जीव हूं।

दिनेश - जीव कैसे ?

सुरेश - मुझमें ज्ञान है ।

दिनेश - ज्ञान से तुम्हें क्या लाभ मिलता है ?

सुरेश - मैं ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु को—किसी को छू-कर, किसी को चखकर, किसी को सूंघकर, किसी को देखकर और किसी को सुनकर जान लेता हूं।

दिनेश - बर्फ कैसी होती है ?

सुरेश - ठण्डी ।

दिनेश - आग कैसी होती है ?

सुरेश - गर्म ।

दिनेश - बर्फ ठण्डी होती है और आग गर्म होती है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश - छू कर । जिसके द्वारा हम छू-कर वस्तु को जानते हैं, उसको **'स्पर्शन-इन्द्रिय'** कहते हैं।

दिनेश - मिश्री कैसी होती है ?

सुरेश - मीठी ।

दिनेश - नींबू कैसा होता है ?

सुरेश - खट्टा

दिनेश - मिश्री मीठी और नींबू खट्टा होता है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश - जीभ से चखकर । जिसके द्वारा वस्तु का स्वाद जाना जाता है, उसको **'रसन-इन्द्रिय'** कहते हैं।

दिनेश - क्या तुमने कभी गुलाब का फूल सूंघा है ?

सुरेश - हां कई बार । उसमें बड़ी सुगंध होती है।

दिनेश - क्या तुमने कभी मिट्टी के तेल को सूंघा है ?

सुरेश - हां, उसमें बड़ी दुर्गन्ध आती है।

दिनेश - गुलाब के फूल में सुगंध और मिट्टी के तेल में दुर्गन्ध आती है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश - नाक से सूंघकर। जिसके द्वारा सूंघकर हम वस्तु का ज्ञान करते हैं, उसे **'घ्राण-इन्द्रिय'** कहते हैं।

दिनेश - कौवे का रंग कैसा होता है ?

सुरेश - काला ।

दिनेश - बगुले का रंग कैसा होता है ?

सुरेश - सफेद ।

दिनेश - कौवा काला और बगुला सफेद होता है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश - आंखों से देखकर । जिसके द्वारा हम देखते हैं उसे **'चक्षु-इन्द्रिय'** कहते हैं।

दिनेश - रमेश आज क्या कर रहा है ?

सुरेश - गा रहा है ।

दिनेश - तुमने यह कैसे जाना ?

सुरेश - उसकी आवाज सुनकर । जिसके द्वारा सुना जाता है, उसे **'श्रोत्र-इन्द्रिय'** कहते हैं।

दिनेश - ये पांच इन्द्रियां हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। कुछ जीव एक इन्द्रिय वाले, कुछ दो इन्द्रिय वाले, कुछ तीन इन्द्रिय वाले, कुछ चार इन्द्रिय वाले और कुछ पांच इन्द्रिय वाले होते हैं, जैसे—

- एक इन्द्रिय (स्पर्शन) वाले जीव- पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा, वनस्पति।
- दो इन्द्रिय (स्पर्शन, रसन) वाले जीव- लट, शंख, जोंक, कृमि आदि ।
- तीन इन्द्रिय (स्पर्शन, रसन, घ्राण) वाले जीव—चींटी, मकोड़ा, जूं, खटमल आदि ।
- चार इन्द्रिय (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु) वाले जीव—मक्खी, मच्छर, भौंरा, टिड्डी, कसारी, बिच्छू आदि ।
- पांच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र) वाले जीव—मत्स्य, मगर, गाय, भैंस, सर्प, पक्षी, मनुष्य, देव, नारक आदि ।

प्रश्न :

१. घ्राण-इन्द्रिय किसे कहते हैं ? उससे क्या जाना जाता है ?
२. रूप को जानने वाली कौन-सी इन्द्रिय है ?
३. गर्मी और ठण्डक का बोध किस इन्द्रिय से होता है ?
४. चार इन्द्रिय वाले जीवों के नाम बताओ ।
५. एक इन्द्रिय में कितनी 'काय' के जीव आते हैं।

२४

वसुमती (१)

(वसुमती की मां प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व घर से बाहर कहीं जाया करती थी। एक दिन मां को जाते देखकर)

वसुमती - मां ! भोर ही भोर रोज कहां जाया करती हो ?

मां - साध्वियों के स्थान में ।

वसुमती - क्यों मां !

मां - साध्वियों के दर्शन करने के लिए ।

वसुमती - उससे क्या लाभ होगा ?

मां - बेटी ! उनके दर्शन करने से मन को शांति मिलती है और सदाचार सीखने को मिलता है।

वसुमती - तब तो मैं भी वहां जाऊंगी ।

मां - बहुत अच्छा । जाना ही चाहिए। (हाथ में कपड़ा लेकर) लो चलो, अब साध्वियों के यहां चलें।

वसुमती - यह हाथ में सफेद कपड़े का टुकड़ा-सा क्या है ?

मां - बेटी ! यह मुंहपत्ती है।

वसुमती - मां ! इसका क्या करोगी ?

मां - बेटी ! मैं वहां जाकर इसको मुंह पर बांधूगी ।

वसुमती - क्यों मां ?

मां - साध्वियों को वंदना करते समय खुले मुंह नहीं बोलना चाहिए।

वसुमती - इसका क्या कारण है ?

मां - खुले मुंह बोलने से हवा के जीव मरने की संभावना रहती है, इसलिए मुंह पर मुंहपत्ती या रुमाल रखना चाहिए ।

वसुमती - मैं भी एक मुंहपत्ती लूंगी ।

मां - (मुंहपत्ती लेकर दोनों साध्वियों के स्थान पर जाती हैं और साध्वियों को तिक्खुत्ते के पाठ से वंदना कर पहले जो स्त्रियां वहां बैठी हुई थीं, उनके पीछे बैठ जाती हैं)

वसुमती - मां ! यहीं क्यों ? आगे चलो, वहां बैठेंगे।

मां - नहीं बेटी ! पहले जो स्त्रियां आई हुई हैं, उनको लांघकर आगे जाना अच्छा नहीं ।

वसुमती - मां आज क्या रसोई बनाओगी ?

मां - देखो बेटी ! यहां ऐसी घरेलू बातें नहीं करनी चाहिए। यहां हम धर्म-ध्यान करने के लिए आई हैं, बातें करने के लिए नहीं। लो, अच्छी तरह से बैठ जाओ । एक मंत्र सिखाती हूं, वह सीख लो ।

(वसुमति झट नमस्कार महामंत्र सीखती है और कुछ देर वहां ठहर कर फिर साध्वियों को वैसे ही वंदना कर घर लौट आती हैं)

प्रश्न :

१. मां ने अपने साथ मुंहपत्ती क्यों ली ?

२. वसुमति ने माता से क्या सीखा ?

३. साध्वियों के दर्शन से क्या लाभ?

२५

वसुमती (२)

(नाश्ता करने के पश्चात् मां को आसन आदि लिए जाते देखकर)

वसुमती - मां ! क्या फिर साध्वियों के स्थान पर ही जा रही हो ?

मां - हां, बेटी !

वसुमती - मैं भी चलूंगी ।

मां - नहीं बेटी ! अब वहां व्याख्यान होगा, तुम अभी छोटी बालिका हो, तुम न तो एक-डेढ़ घण्टे तक एक जगह जमकर बैठी ही रहोगी और न धूम किये बिना तथा बीच में उठे बिना ही रहोगी। इसीलिए इस समय तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं ।

वसुमती - नहीं मां ! मैं शांति से सुनूंगी । न धूम करूंगी और न व्याख्यान के बीच में उठूंगी ही ।

(दोनों साध्वियों के स्थान पर आई। इतने में मां ने देखा कि उसकी जेब में एक गुलाब का फूल है।)

मां - (बड़े ही कोमल शब्दों में) बेटी ! इसको यहीं दूर रख दो।

वसुमती - मां इसमें क्या आपत्ति है ?

मां - यह सचित्त (जीव सहित) है। इसको पास रखकर हम साध्वियों के चरण नहीं छू सकती। फूल के जीवों को छूने मात्र से ही कष्ट होता है, अतः साध्वियां इनको नहीं छूती हैं। साध्वियों के स्थान पर कोई भी सचित्त

वस्तु नहीं ले जानी चाहिए।

वसुमती - ठीक है मां ! अब ध्यान रखूंगी।

(दरवाजे के पास चप्पलें खोलकर दोनों अन्दर गई और साध्वियों को विधिपूर्वक वंदना कर व्याख्यान-मण्डप में बैठ गई। माता ने अपना बैठका खोला, जिसमें दो-चार धार्मिक पुस्तकें और एक पूंजनी थी।)

वसुमती - मां ! ये क्या है ?

मां - ये धार्मिक पुस्तकें हैं। जब तक व्याख्यान प्रारम्भ नहीं होता, तब तक मैं इन्हें पढ़ा करती हूं।

वसुमती - मां ! यह लम्बे-लम्बे तारों की गूंथी हुई क्या चीज है ?

मां - इसका नाम पूंजनी है।

रात के समय में जब चलना-फिरना पड़ता है तब इससे पूंज-पूंजकर चलते हैं और दिन में भी यदि कोई जीव-जंतु पास आ जाते हैं तो उन्हें इससे पूंजकर अलग कर देते हैं, जिससे उनको कष्ट न हो ।

(वे दोनों धार्मिक बातें कर ही रही थी कि इतने में साध्वियां आईं और सब लोग खड़े हो गये । नमस्कार-मंत्र का पाठ हुआ और उसके बाद सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। साध्वीश्री ने नमस्कार-महामन्त्र का वर्णन किया और पांच पदों के अलग-अलग गुण बतलाये। सारी जनता का विशेषकर वसुमती का बाल-हृदय अत्यन्त प्रभावित हुआ। साध्वीश्री ने मंगलपाठ सुना कर व्याख्यान समाप्त किया। वसुमती जल्दी से उठने लगी।)

मां - बेटी ! थोड़ा धीरज रखो । पहले आगे आने वाली बहिनों को निकल जाने दो । इतने उतावलेपन से क्या मतलब ? हर एक काम सभ्यता से करना चाहिए । अच्छा बताओ, आज के व्याख्यान से तुमने क्या सीखा ? क्योंकि व्याख्यान सुनने का लाभ तो यही है कि उससे कुछ न कुछ सीखा जाए ।

वसुमती - मां ! आज से नियम लेती हूं कि मैं जो कुछ भी करूंगी, उसके पहले कम से कम नमस्कार महामन्त्र का पांच बार स्मरण अवश्य करूंगी।

प्रश्न :

१. माता ने वसुमती को व्याख्यान में जाने से क्यों रोका ?

२. माता ने गुलाब के फूल को अलग क्यों रखवाया ?

३. सामायिक में पूंजनी क्यों रखी जाती है ?

४. वसुमती ने व्याख्यान से क्या सीखा ?

२६

विनय

सुशीला - मां ! तुम नीला को बार-बार उलाहना देती हो, पर श्यामा को कुछ भी नहीं कहती, ऐसा क्यों है, मां ?

मां - श्यामा बड़ी विनीत और सुशील है, बेटी !

सुशीला - विनीत कैसे ?

मां - बेटी ! वह मेरा कहा मानती है। इशारे में समझती है। दोनों वक्त बड़ों को प्रणाम करती है। संत-सतियों के नियमित दर्शन करती है, रास्ते में मिलने पर उन्हें वंदना करती है। किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करती । मैं जो काम करने को कहती हूं, उसे वह सहर्ष स्वीकार करती है। सबसे मेलजोल रखती है। उसका झुका हुआ सिर, जुड़े हुए हाथ कितने मोहक लगते हैं।

सुशीला - मां ! उसने तो मुझे भी मोहित कर डाला ।

मां - बेटी ! नम्रता तो मोहनी-मंत्र है न ! इससे पत्थर-हृदय भी पसीज जाता है।

सुशीला - मां ! क्या नीला विनय नहीं करती ?

मां - अरी, विनय कहां, वह तो एक बार तड़ाके से जवाब देती है और न कोई काम ही ठीक तरह से करती है। न पढ़ती है, सारे दिन इधर-उधर घूमती रहती है। इसीलिए तो वह किसी को भी अच्छी नहीं लगती।

सुशीला - यदि विनय के बिना ऐसी ही हालत होती है, तब तो मैं सबका विनय किया करूंगी ।

मां - हां बेटी ! विनय श्रेष्ठ गुण है। विनय की पूछ संसार और धर्म-मार्ग दोनों में है। बेटी ! उद्दण्डता कहीं भी अच्छी नहीं होती । तुमने देखा होगा—फले-फूले झाड़ कितने नमते हैं और सूखा वृक्ष टूट भले जाये किन्तु नमता नहीं । बेटी ! जो विद्वान् होते हैं, वे नमा करते हैं। मूर्ख आदमी कभी नहीं नमते ।

सुशीला - मां ! मैं समझ गई, अपने यहां साधु-साध्वी आया करते हैं, तब तुम खड़ी हुआ करती हो, सिर झुकाया करती हो, हाथ जोड़ा करती हो और उनका विनय किया करती हो ।

मां - हां, सुशीला ! वे अपने धर्मगुरु हैं। उनकी जितनी विनय-भक्ति की जाये वह थोड़ी है। बेटी ! वे हमको आत्म-सुधार का रास्ता बताते हैं। जो बड़े हैं उनका विनय करना जिस प्रकार हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है उसी प्रकार धर्मगुरुओं का विनय करना भी हमारा पहला धर्म है।

सुशीला - मां ! तुमने आज मुझे बड़ी अच्छी बात बताई । मैं सदा विनय किया करूंगी और अविनय कभी नहीं करूंगी ।

प्रश्न :

१. श्यामा मां को क्यों अच्छी लगती है ?

२. नीला मां को क्यों अच्छी नहीं लगती ?

३. साधु-साध्वियों के घर आने पर क्या करना चाहिए ?

२७

क्रोध को क्षमा से शांत करो

पुराने जमाने की बात है। एक जंगल में 'कनकखल' नाम का आश्रम था। वहां अनेक तपस्वी रहते थे। उस आश्रम का कुलपति बहुत क्रोधी था। उसका नाम था चंडकौशिक। एक बार कुछ राजकुमार उसके आश्रम में आकर फल-फूल तोड़ने लगे। वह उनके पीछे दौड़ा । पैर फिसल गया। वह एक गड्ढ़े में गिरा और तत्काल मर गया। मर कर वह उसी जंगल में सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ। यह क्रोध का ही परिणाम था।

एक बार भगवान् महावीर घूमते-घूमते उसी जंगल में आ गए । वे वनखंड में वहां पहुंचकर ध्यान में स्थिर हो गए । चंडकौशिक सर्प वहां आया । उसने अपने बिल के पास एक मनुष्य को देखा। उसका क्रोध भभक उठा । उसकी आंखों से विष की ज्वालाएं उछलने लगी। विषधर ने तीन बार फुफकारते हुए महावीर को डंक मारने का प्रयत्न किया, किन्तु वे ध्यान से विचलित नहीं हुए। अंत में उसने महावीर के पैर में डंक मारा । रक्त की धारा बह चली। विषधर ने उसे चूसा । लहू दूध जैसा लगा। विषधर ने सोचा, यह क्या ! आज तक भी मेरा प्रहार खाली नहीं गया, लेकिन यह व्यक्ति ज्यों का त्यों खड़ा है। आखिर यह है कौन ? इस प्रकार चिन्तन करते हुए उसे जातिस्मरण ज्ञान (पूर्वजन्म का ज्ञान) उत्पन्न हो गया । ज्ञान के द्वारा उसने भगवान् महावीर को जाना । उसका अहं चूर-चूर हो गया ।

महावीर ने आंखे खोलीं। उनमें से प्रेम बरसने लगा। विषधर शांत हो गया। उसको पूर्वजन्म की स्मृति हो आई। महावीर ने

कहा—विषधर ! क्रोध का फल तुमने देख लिया । क्रोध के कारण तुमको कितने कष्ट झेलने पड़े ? अब जागृत हो जाओ । सब जीवों के प्रति समभाव रखो। क्रोध को प्रेम में बदल डालो।

अब चंड कौशिक ज्ञानी बन गया। महावीर की अमृतमयी वाणी का उस पर प्रभाव हुआ और वह सदा के लिए शांत बन गया।

तात्पर्य

क्रोध को क्रोध से नहीं जीता जा सकता। क्रोध करने वाला बच्चा अपने परिवार में भी आदर नहीं पा सकता, इसलिए बालकों को क्रोध के द्वारा नहीं, क्षमा के द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

प्रश्न :

१. चंडकौशिक की कहानी संक्षेप में लिखो ।

२. भगवान् महावीर ने सर्प से क्या कहा ?

३. क्रोध को कैसे जीता जा सकता है ?

४. आश्रम का नाम क्या था ?

५. चंडकौशिक पूर्व जन्म में क्या था ?

२८

पाप से डरो

एक गांव में क्षीरकदम्ब नाम के उपाध्याय रहते थे। उनके पास वसु, पर्वत और नारद ये तीन बालक पढ़ते थे। वसु राजनगर का राजकुमार था। पर्वत उपाध्याय क्षीर-कदम्ब का पुत्र था और नारद एक ब्राह्मण पुत्र था। उपाध्याय उनको बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। एक दिन कई साधु आपस में बातचीत कर रहे थे कि इन बालकों में दो तो नरकगामी है और एक स्वर्ग-गामी है। उपाध्याय ने यह सब सुन लिया और उनकी परीक्षा के लिए आटे के तीन मुर्गे बनाए जो देखने में असली मुर्गे जैसे थे और तीनों शिष्यों को बुलाकर कहा—एक-एक मुर्गा ले जाओ और जहां कोई नहीं देखता हो वहां इन्हें ले जाकर मार डालो ।

वसु और पर्व ने एक अन्धेरी गुफा में जाकर अपने-अपने मुर्गों को मार डाला, परन्तु नारद घूमकर जैसे गया, वैसे ही लौट आया । उपाध्याय ने उनसे पूछा—क्यों, मार आये ? वसु और पर्वत ने कहा—जी हां, पर नारद ने कहा—जी नहीं । उपाध्याय ने नारद से पूछा—तुमने मेरा आदेश क्यों नहीं माना ?

नारद - मैंने तो आपके आदेश का ही पालन किया है। मुझे तो ऐसा कोई स्थान नहीं मिला, जहां कोई भी नहीं देखता हो ।

उपाध्याय - तुम कहीं एकांत में नहीं गए होगे ?

नारद - मैं बहुत दूर घने जंगल में चला गया था और ज्योंही उसे मारने लगा, त्योंही मुझे याद आया कि और कोई नहीं तो परमात्मा तो देख ही रहे हैं।

बस, मैंने सोच लिया कि अब तो कोई भी स्थान
ऐसा नहीं है जहां कोई न देखता हो।

इस परीक्षा से उपाध्याय ने जान लिया कि वसु और पर्वत की दुर्गति होगी और नारद की सद्गति ।

किसी को जो व्यक्ति मारने में संकोच नहीं करता वह नरकगामी होता है और जो व्यक्ति किसी को मारने में संकोच का अनुभव करता है वह स्वर्गगामी होता है।

प्रश्न :

१. नारद को एकान्त स्थान क्यों नहीं मिला ?

२. उपाध्याय की परीक्षा में वसु और पर्वत क्यों असफल रहे ?

३. नरकगामी कौन होता है ?

२९

नमस्कार-मन्त्र का चमत्कार

एक बार राजा श्रेणिक ने एक विशाल राज-प्रासाद बनवाना चाहा । किन्तु ज्योंही वह पूर्ण होने जाता, त्योंही वह ढह जाता । राजा ने ज्योतिषियों से पूछा कि अब क्या करना चाहिए ? उन्होंने कहा—'महाराज ! इसके लिए एक बत्तीस लक्षण वाले बालक की बलि करवाइए।' राजा ने उसी समय ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई अपने पुत्र को हवन करने के लिए देगा उसके बराबर उसे सोना मिलेगा। भद्रा नामक स्त्री ने पति के रोकने पर भी लोभ में पड़कर यह स्वीकार कर लिया और अपने किशोर बालक अमरकुमार को होम के लिए सौंप दिया ।

रानी चेलना को जब यह मालूम हुआ तो उसने राजा को बहुत कुछ कहा-सुना, पर राजा ने एक न मानी । रानी ने होम करनेवालों को भी धमकाया, पर वे भी अपनी बात पर डटे रहे। रानी सर्वथा निरुपाय होकर उस बिलखते हुए बालक के पास गई और उसे ढाढस देती हुई कहने लगी—'अमरकुमार ! इस तरह रोओ मत । धीरज रखो, सब ठीक होगा। लो, मैं तुम्हें एक मंत्र बताती हूं। उसका जाप करो । उससे तुम्हारी रक्षा होगी, सुनते हो ?'

अमरकुमार - हां रानीजी ! सुन रहा हूं, कौन-सा मंत्र है वह ?

रानी - लो सीखो । (रानी ने नमस्कार मंत्र सिखाया)

अमरकुमार - मैं इसे पहले ही जानता हूं, मैंने यह साधुओं से सीखा था ।

रानी - तो बस, चिन्ता की कोई बात नहीं । आंसू पोंछ

लो और स्थिर-चित्त होकर इसका जाप करने लग जाओ ।

कुमार को इससे बड़ा बल मिला । वह मंत्र का जाप करने लग गया। होम करने वाले आये और ज्योंही उसे अग्निकुण्ड में ढकेलना चाहा, त्योंही नमस्कार-मंत्र के प्रभाव से अग्नि ठंडी हो गई। वहां एक सिंहासन बन गया और वे लोग मूर्च्छित होकर गिर पड़े ।

राजा को जब यह मालूम हुआ तो वह दौड़ा-दौड़ा आया। वहां की स्थिति को देखकर उसे अचंभा हुआ। उसने कुमार से राज्य करने के लिए आग्रह किया। अमरकुमार ने उत्तर देते हुए कहा—मैं जिसके प्रभाव से बचा हूं, उसकी शरण लूंगा । राज्य से मुझे कोई मतलब नहीं ।

कुमार ने दीक्षा ली और आत्मा का कल्याण किया ।

प्रश्न :

१. अमरकुमार की माता का नाम क्या था ?

२. जब राजा ने अमरकुमार से राज्य करने का आग्रह किया तो उसने क्या उत्तर दिया ?

३. अमरकुमार को नवकार मंत्र के जाप की किसने प्रेरणा दी ?

४. राजा श्रेणिक अमर कुमार की बली क्यों देना चाहता था ?

विशेष जानकारी

प्रस्तुत पुस्तक में विक्रम संवत् एवं ई. सन् हिन्दी अंकों में प्रकाशित है। परन्तु वर्तमान में हिन्दी अंकों को जानने वाले विद्यार्थी कम है, इसलिए हिन्दी अंकों को रोमन अंको में किस तरह से पढ़ सकते है इसकी जानकारी दी जा रही है।

हिन्दी अंक	रोमन अंक
१	1
२	2
३	3
४	4
५	5
६	6
७	7
८	8
९	9

अच्छा बालक कौन?

- जो पाप से डरता है ।
- जो बुरी संगत से बचता है।
- जो अच्छा आचरण करता है।
- जो सदा सच बोलता है।
- जो किसी को गाली नहीं देता।
- जो अपनी गलती को नहीं छुपाता।
- जो किसी को ठगने की चेष्टा नहीं करता।
- जो प्रातःकाल शीघ्र उठता है।
- जो अपना काम ठीक समय पर करता है।
- जो माता-पिता और गुरुजनों के प्रति विनम्र होता है।
- जो हमेशा स्वच्छ रहता है।

जैन विश्व भारती प्रकाशन
Books are available online at http://books.jvbharati.org

₹ 30/-